TEXT DARK
AND LIGHT

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180051
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1 S53 P Accession No. GH. 2039

Author शर्मा, श्रीराम। - शाम।

Title प्रेम का मूल्य।

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रभात-किरण—३

प्रेम का मूल्य

[नारी जीवन की त्यागमयी गल्पें]

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा 'राम'

प्रभात प्रकाशन
दरीबा कलां, दिल्ली।

कहानी की सूची

संख्या	नाम	पृष्ठ
१	पत्थर में जोंक ··· ···	१
२	जोहरा ··· ··· ···	२६
३	प्रेम का मूल्य ··· ···	४५
४	अलबेली पान वाली ·····	६२
५	वह पापी था ··· ···	८०

सजिल्द मूल्य डेढ़ रुपया मात्र

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

प्रथमवार

प्रकाशक	मई	मुद्रक
नेमचन्द जैन 'अम्र'	१	यज्ञदत्त शर्मा एम. ए.
प्रभात प्रकाशन के लिए	६	मानसरोवर,
साहित्य-मण्डल दिल्ली	४	प्रेस
द्वारा प्रकाशित	६	देहली

प्रकाशक की ओर से

आज हम अपनी तृतीय किरण 'प्रेम का मूल्य' पाठकों को भेंट कर रहे हैं। इसमें पं० श्रीराम जी शर्मा 'राम' की कहानियों का सङ्कलन है।

श्रीराम जी हिन्दी के उन मजे हुए प्रगतिशील कहानीकारों में से हैं, जिनकी रचनाओं को १९३२ से हिन्दी के महत्वपूर्ण साहित्यक पत्रों में आदरणीय स्थान मिलता आया है। सुखी-गृहस्थ और फक्कड़-स्वाभावी, साथ ही अलमस्त कलाकार जो झुकने से संघर्ष अधिक पसन्द करते हैं।

समाज के अतिरिक्त व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन भी है जिसमें सुख, दुःख, हर्ष, आवेग सभी कुछ हैं। मानव जिनमें रोता हँसता और मुस्कराता है। इन्हीं सब मानसिक संघर्षों का चित्रण इन कहानियों में है। कौम, समाज और धर्म से ऊपर उठे हुए इन मानव-मानवियों की प्रेम गाथायें नारी जीवन के त्याग का चित्र उपस्थित करती हैं? कहानी कैसी है, क्या है? इसका अन्तिम निर्णय पाठकों के ऊपर है।

यदि पाठकों ने संग्रह को अपनाया तो हम अपना प्रयास सफल मानेंगे और शीघ्र ही उनकी अन्य रचनायें भी प्रस्तुत करेंगे।

विनीत—
नेमचन्द जैन 'अप्र' साहित्यरत्न

पत्थर में जोंक

लेखक—श्रीराम शर्मा 'राम'

गांव में जमींदार के यहां यह मशहूर-सी बात हो गयी कि जो भी नया नौकर आया, वह दो-चार महीने से अधिक नहीं टिका। पूरी जमींदारी, हमेशा दस-बारह नौकरों का काम। प्रायः एक-दो नौकर की जरूरत पड़ती ही रहती। पर तोता चमार ने इस बात को जैसे गलत साबित किया। वह शुरू में तीन रुपये और खुराक पर रखा गया। बढ़ते-बढ़ते सात रुपये खुराक हुई। जमींदार ठाकुर का कोप, नौकरों को बे बात की गालियां देना, कभी हाथ भी छोड़ बैठना, यही बातें नौकरों को उनके यहां अधिक टिकने में रुकावट डालतीं जब कोई नौकर इस बात की शिकायत करता और कहीं ठाकुर साहब खश हुए बैठे होते, तो तुरन्त तोता को उदाहरण-रूप में पेश करके नौकरों के कामों की आलोचना करते हुए

कहते—"जरा अपने इसी साथी से पूछो, आठ-दस साल काम करते हो गये, मैंने कितनी बार इसे गालियां दी हैं।"

नौकर जैसे ठाकुर साहब की इस मिसाल के कायल हो जाते। फिर इस विषय में कुछ न कहते।

पर तोता इन विवाद-ग्रस्त बातों पर कदाचित ध्यान ही न देता ठाकुर साहब की अपने लिये की गई प्रशंसा जब उसके साथी उससे कहते, तो वह इस तरह उन्हें घुड़क देता, मानो वे बेसमझे, उसके प्रतिकूल कोई बात कह रहे हैं।

किन्तु तोता पुराना नौकर चाहे हो गया था, लेकिन लोगों ने उसके पुरानेपन को न देख कर, उसकी उन बातों को देखा जिनसे वह गांव भर में प्रसिद्ध था। और यही बातें प्रत्येक को—यहां तक कि ठाकुर साहब को भी अन्य नौकरों की तरह उसके ऊपर स्वामित्व जमाने से रोकतीं।

जिस समय तोता पहले-पहल गांव में आकर जमींदार के यहां नौकरी के उद्देश्य से पहुंचा, और वह भी उस समय, जब कि उन्हें कई आदमियों की आवश्यकता थी,

तोता को देखकर; एकाएक वह भी उसे रखते झिझके। पर जरूरत थी, तोता रख लिया गया, नौकर होते ही एक दो दिन में तोता की विचित्र सूरत, मानो काला लंगूर हो, माथे में धँसी हुई छोटी आंखें, चिपटी नाक, और बेढंगे ओठ, आदि कुदरती बनावट के भयंकर चेहरे ने गांव वालों को निश्चय करा दिया कि मानो तोता-रूप में कोई राक्षस गांव में आ बसा है। किन्तु जिस घृणा के साथ लोगों ने तोता को गांव में जमते देखा, उसके साथ उन्हें यह भी मालूम हो गया कि वह शक्ल से जितना बुरा हो--गांव में ऐसा कोई नहीं, जो उसकी ताकत का मुकाबला कर सके।

नौकरों ने और ठाकुर ने इस बात को अनुभव किया कि जिस काम के लिए तीन-चार आदमियों की जरूरत पड़ती थी, अब तोता उसे अकेला ही करने की शक्ति रखता है। सवेरा होते ही, तोता चरी के खेत में जाकर दरांती चलाकर जुआर काटना शुरू कर देता। दोपहर होते-होते तीन मन का गट्ठा काट कर अपने-आप सिर पर रख, दो मील चल कर आ पटकता, उसे काटता और बैलों को खिलाता। अन्य नौकर देखते कि तोता पसीने में नहा रहा है, उसकी मिरजई से पसीना चू रहा है, किंतु इसे

तब तक सुध न रहती, जब तक कि बैलों के आगे चारा डाल कर, बारी-बारी से उनकी कमर पर थपकी न दे लेता। पहिले इस आधे दिन के काम को तीन नौकर करते थे, लेकिन अब अकेला तोता, उनसे भी एक घण्टा पहिले करके, अपनी गुड़गुड़ी बजाने बैठ जाता है।

एक बार जंगल से नाज उठाकर लाती हुई भरी गाड़ी जब गांव में आई गलिहारे में इतनी कीचड़ थी कि गाड़ी के पहिए उसमें धँस गये और उनका निकलना मुश्किल हो गया।

एक घण्टा हो गया, बैलों के जोर लगाने और आदमियों के पहिए को उभार देने पर भी गाड़ी न निकल सकी। उसी समय जंगल से तोता चरी का बोझ सिर पर रखे आ पहुंचा। तोता ने जो यह देखा तो तुरन्त बोझ को जमीन पर पटक दिया। जब वह गाड़ी के पहिये की तरफ बढ़ा तो लोग हट गये। देखते ही देखते तोता ने पहिले जोर में पहिए को कीचड़ से निकाल कर अलग रख दिया। सब लोग अवाक रह गये। ठाकुर खड़े थे, झट जेब से अठन्नी निकाल कर तोता को देते हुए बोले—"लो तोता दूध पीना।"

तोता ने चुप-चाप अठन्नी ली और अपना बोझ उठा कर चल दिया।

ऐसी ही, और भी कई बातें घटीं, जिनके कारण तोता गांव भर में कौतूहल की चीज बन गया। गांव के कुछ लोग तोता के गुण देखते, कुछ उसकी बुराई।

विशेषतः स्त्रियां तोता की सूरत से ही अलग रहतीं। जब शाम को ठाकुर के कुंए पर स्त्रियां पानी भरने आतीं और कहीं इत्तफाक से वहीं पास के चबूतरे पर बैठे तोता को गुड़गुड़ी पीता देख लेतीं, तो बेचारी नई डरपोक लड़कियां तो वैसे ही वापिस फिर जातीं। और जो पानी भरतीं, वे तोताकी ही चर्चा करतीं। तोता के भयङ्कर चेहरे की चर्चा; वह जानवर है, आदमियों में लँगूर है, आदि जली-कटी बातें। पर जैसे तोता को इन बातों से कोई मतलब ही न था। वह उनकी ओर घूरता हुआ, उसी तरह गुड़गुड़ी पीता रहता। लेकिन और लोगों को उसके मजबूत हाथ, जलती हुई लाल आंखें, सदा ही उसके प्रति उदण्डता करने से सतर्क रखतीं। इसीलिये वे कभी खुल कर उसके मुँह पर उसकी कुरूपता आदि की चर्चा नहीं करते थे। साथ ही, तोता की बात करने की शैली,

आवाज़ का रूखापन, मोह और मान रहित बोल, प्रायः किसी को उससे उत्तर की प्रत्याशा से बात करने का साहस ही न देते।

इस तरह तोता गांव में रह कर भी गांव से अलग था। और जैसे लोग उससे बात नहीं करना चाहते, वैसे ही वह भी कभी किसी से न बोलता। मालिक के काम से निबटा, रोटी खाई, फिर जंगल में होता, या चमारों के बीच अपनी डाली हुई झोपड़ी में। वह अभागा अपने जाति-भाइयों से भी हुक्का-पानी का मोह न रखता। बहुधा देखा गया, तोता अलग बैठकर न जाने क्या सोचता। कभी कोई नौकर इस तरह बैठे देख कर कुछ पूछने का साहस करता, तो तोता इस प्रकार उसकी ओर जलती आंखों से देखता, कि वह बोल ही न पाता। ठाकुर के सब नौकर अपने काम से छुट्टी पाकर आपस में बातें करते, हँसते-बोलते, पर तोता कभी उनकी गोष्टी में शरीक न होता। यहां तक कि अपने मालिक से भी अधिक न बोलता।

लेकिन इस तरह के वैराग्य के साथ-साथ तोता के अन्तस्थल में प्रगाढ़ ममता का जो स्त्रोत उमड़ रहा था,

और जो कभी रह-रह कर उकस-उकस कर बाहर आना चाहता था, मूर्ख काला-कलूटा, भोंडी शक्ल का भीमकाय तोता, उसे न रोक न पाता था। जब बच्चे इधर-उधर से खेलते हुए उसकी आंखें बचाकर उसके खेत में हाथ मारते या मटर की फलियां तोड़ते, तो तोता जान-बूझकर उनकी तरफ से आंखें फेर लेता। जब जंगल से आता, तो ठाकुर के दो छोटे बच्चों को पुकार कर कहता—'लिल्लो, मिन्नो, लो चिजो।' बक्जे चीज़ ले लेते, पर वे तोता से अधिक हिलते-मिलते नहीं। तोता भी कभी कोशिश न करता। जिस तरह और नौकर तोता से सतर्क रहते, उसका लिहाज करते, वही बात बच्चों पर भी लागू थी।

... ...

तोता के प्रति ज़मींदार ठाकुर के मन में कई बार आया कि तोता हमारा विश्वासी नौकर बन गया है, शायद अब जायेगा नहीं। तब वह उसके नैतिक और सामाजिक जीवन को देखते। वह तोता के शून्य व्यक्तित्व को देख कर अनुभव करते, आखिर इस जीवन का भी क्या ध्येय है। बलिष्ठ, ईमानदार है; पर इन बातों से अन्तर्जगत् का क्या सम्बन्ध। वह अपनी दृष्टि से इस बात की खोज करते कि इस गांव में कोई भी ऐसा है, जो

तोता को ज़रा भी भली निगाह से देखता है। लेकिन, वह साथ ही समाधान करते, और-तो-और, जिस ठाकुरानी की उँगलियों पर वह नाचता है, वह तक उसकी सूरत को देख कर नाक सिकोड़ती है। फिर कहते, अगर उसका ब्याह हो जाय, तो कैसा!···

एक दिन जब तोता अपने कामों से छुट्टी पाकर, गुड़गुड़ी ताजी करके और तबेदार चिलम भर कर बैठा, तो ठाकुर, जो पास-ही खाट पर लेटे हुए थे, पूछ उठे—"सब बैलों को चारा पड़ गया, तोता?"

तोता ने ज़रा खांसकर कहा—"पड़गया।"

क्षण भर रुककर ठाकुर ने फिर कहा—"तोता, कहीं अपने ब्याह की टिप्पस लगा न, खरचा मैं दे दूंगा।"

तोता मालिक के उस आकस्मिक प्रश्न को सुन कर चकित सा तुरन्त बोल पड़ा—"ब्याह विहा नहीं करना, बस ऐसे ही ज़िन्दगी कट जायगी।" एक उड़ती नज़र ठाकुर पर डालकर उसने मुंह का घना सा धुआं ऊपर को छोड़ दिया।

ठाकुर चुप रहे। तोता ने इस तरह लम्बे पैर सिकोड़ कर निश्चिन्तता से दम लगाये, मानो वह इस विषय में

बिल्कुल लापरवाह है, पर मालिक की बात ने अनायास उसे नोच लिया, और अब वह उसे भूलने की कोशिश में हैं।

कुछ देर बैठ कर तोता अपने घर चला। घर में चिलम की आग से जरा से फूस को जला कर दिया बाला, खाट पर बैठ कुछ देर और गुड़गुड़ी लगाई, फिर दिया बुझाकर सो गया। जाने उसने एक नींद ली, या दो कि एकाएक उनकी आंख खुल गई, आंखें झोपड़ी के शून्य अन्धेरे में घूरने लगीं पर जैसे यह कानों का दोष था, तोता उठ कर बैठ गया। कानों ने जिस लिये उठा दिया। वह जरा स्पष्ट हुआ। बराबर वाले घर में से रोने की दर्द भरी आवाज आ रही थी। जब आवाज को ध्यान से सुना तो वह स्वर बिहारी की स्त्री को जान पड़ा। जिस दिन बिहारी मरा था, तोता भी श्मशान तक साथ गया था।

तोता को जिज्ञासा हुई। क्यो रो रही है, यह! उठा और बिहारी की झोंपड़ी के सामने जाकर बोला—'बिहारी बहू!"

बिहारी की बहू तोता को बाहर देख कर चौंक पड़ी। आंसू भी रुक गये। हिचकियां भरती, सहमी हुई, बोली—"कहो।"

तोता ने पूछा--"रोती क्यों है ?"

बिहारी की बहू इस प्रश्न को सुन कर दुःख और अचम्भे से तोता का मुंह देखने लगी। क्षण भर रुक कर बोली--"अपने भाग्य को रोती हूं--और क्यों ?"

तोता इसका कुछ मतलब न पाकर जरा ऊंचे स्वर में बोला--"फिर भी, कुछ तो ?"

कदाचित बिहारी की बहू ने यह जान कर ही, रूखेपन से तोता को देखा कि गांव की औरतों का दुश्मन, औरतों की सूरत से भी चिढ़ने वाला यह तोता, मुझसे मेरे रोने की बात पूछ रहा है. उसे तनिक देर के लिए विस्मय और भय के अतिरिक्त, और कुछ न जान पड़ा। पर जब तोता ने कहा-'फिर भी, कुछ तो ?'--तो बिहारी की बहू के दिल में वह भावना जगी, जो रोते हुए व्यक्ति में किसी से ढाढस भरी समवेदना मिलने पर जग जाती है। और उसने रुलाई के प्रबल आवेग को दबाने की चेष्टा करते हुये कहा--"क्या करोगे, सुनकर ?"--फिर अपने आप बोली--"तुम तो जानते हो, जब परमात्मा को दुःख देना होता है, हर तरह से देता है। राँड हुई, छाती पर लड़की बैठी है। अब अगर अपने और इसके पेट के लिये घास-

पत्ता बेच कर दाने लाऊँ, तो निपूते थाने के सिपाहियों से चैन नहीं..." कहते-कहते वह फिर रोने लगी।

तोता इस बात को सुनकर जरा और निकट आ गया। उसने माथे में बल डालकर पूछा--"तो सिपाही तुझसे क्या कहते हैं?"

"कहते हैं, मेरा सिर!"-बिहारी की बहू अपना माथा ठोंककर बोली।

तोता के माथे की सिलवटें गहरी हो गईं। उसने फिर फिर पूछा—"तो तुम्हें सिपाही छेड़ते हैं?—हूं!"

बिहारी की बहू कुछ न बोली। तोता ने कहा—"थाने में तो बहुत से सिपाही रहते हैं, तू जाने किसे कहती है?"

बहू ने कहा—"वही, जो तुम्हारे ठाकुर के यहां दूसरे-तीसरे दिन आया करता है। आज तो उसने..." कहते-कहते गला भर आया पर किसी तरह बोली—"न जाने कैसे बच कर आयी हूं।"

एकाएक मानो तोता की नसें फूल गईं। जमीन में थूक कर बोला—"तो वह तुझे छेड़ता है? सच, छेड़ता है?"

बिहारी की बहू उससे बोली—"पता है, इस छेड़ने के

डर से चार दिन हो गये, बाजार में घास तक नहीं ले गयी हूं।"

तोता बोला—"तूने उससे कहा नहीं, कि मुझे छोड़ कर क्यों पाप कमाते हो?"

बिहारी की वह बोली—"कहा नहीं तो क्या! बीसियों बार पैरों पड़ी, गिड़गिड़ायी, पर वह माने तब ना! या तो उसकी राजी करूँ या घर में बैठ कर भूखी मरूँ।"

तोता का हृदय झनझना उठा। बोला—"देख, अगर वह तुझे छोड़े, तो कहना, परसों दोपहर को रास्ते में अठबिधिया ईख के डोले पर मिले। समझी?—मैं समझ लूँगा। बस, रो मत, सो जा।"

... ...

निदान बिहारी की बहू तोता के कहने पर चली। तोता ने जब रात को बिहारी की बहू से यह जाना कि वह मानता नहीं, वायदे पर राजी है, तो उसे रात भर आंख मींचने की फुरसत नहीं मिली। जिस तोता को, अन्य स्त्रियों की तरह यह बहू भी नहीं देखती—और शायद तोता चाहता भी नहीं, वही आज नारी के पचड़े में पड़ रहा है। रात भर वह यही सोचता रहा।

सुबह को किसी से बिना बोले, सीधा वह जंगल में जाकर चरी काटने लगा । और नौकर अभी इधर-उधर ही लगे रहे कि तोता ने चरी लाकर कुट्टी करनी शुरू कर दी।

एक नौकर ने पूछा—"तोता, आज तो बड़ी जल्दी चरी ले आये ?"

तोता ने कहा—तो फिर !"

पूछने वाले ने फिर कुछ बोलने का साहस न किया।

समूची चरी काट कर बैलों के सामने डाल दी। तब तोता ने अपनी गुड़गुड़ी भरी। आध घण्टे तक उसे पीने के बाद वह फिर जंगल की ओर चला। यही उसका खेल देखने का समय था। घूमता हुआ तोता अठबिधिया ईख की ओर पहुंचा। दूर ही से देखा, बिहारी की बहू लाल ओढ़नी ओढ़े डोले पर घास खोद रही है। पर जब पास पहुंचा तो उसने देखा, बिहारी की बहू घास न खोद कर पास में खड़े सिपाही के आगे बढ़े हाथों को झिड़क रही है। उनकी छीना-झपटी भी शुरू हुई दीखी। इस दृश्य को तोता ने तनिक ठिठक कर देखा। कदाचित बिहारी की

बहू ने तोता को देख लिया था, और तोता ने भी देख लिया। उस छीना-झपटी में बहू की चोली फट गयी। तोता आगे बढ़ा। सिपाही जैसे वादे को पूरा ही करेगा कि तोता तपाक से उसकी गर्दन पकड़ कर बोला—"क्यों औरत पर मर्दुमी दिखा रहे हो ?"

सिपाही में इतनी शक्ति नहीं थी, जो तोता के मजबूत हाथों से गर्दन छुड़ा लेता। तोता में भी शायद इतनी जब्त नहीं थी, जो अपने गुस्से को शान्त करके गर्दन छोड़ देता। वह फिर बोला—"तुम्हें शर्म नहीं ! जरा तो इस जबर्दस्ती पर शरमाओ।" कहते हुए उसने सिपाही को एक ओर धकेल दिया।

सिपाही के गले की नसें फूल गयीं। वह जमीन से उठकर अपनी चिरस्थत्व-भरी घुड़की में बोला—"तोता के बच्चे ! होश में है, या नहीं। जेल में सड़वा दूंगा। समझा ?"

बात सुन कर तोता तनिक मुस्कराया। पर जब सिपाही उस पर आया ही, तो उसने उठा कर उसे जमीन पर पटक दिया। फिर छाती पर चढ़कर बोला—"निकाल दूं दम !—क्यों बे निकालू दम !" कहने के साथ ही उसने

सिपाही के मुंह पर आठ-दस चांटे जड़ दिये। फिर छोड़ कर कहा—"जाओ, यह सामने थाने का रास्ता है। कहे देता हूं, अब कभी इस औरत की ओर न देखना।"

तोता एक ओर को चला गया। बिहारी की बहू फिर घास खोदने लगी। हवलदार बड़बड़ाता हुआ अपना पाजामा झाड़ कर थाने की तरफ़ हो लिया। उसके चेहरे से लग रहा था मानो तोता की जिस उद्दण्डता ने उसे इस समय परीशान किया उसे वह कुचलकर छोड़ेगा।

... ...

इस घटना के कुछ दिन बाद तोता को अकस्मात बुखार आ गया। ठाकुर को जब तोता की बीमारी का पता चला, तो कई बार उसकी खबर लेते आदमी भेजा। पर तोता की बेफिक्री और जल्दी ही काम पर आने की बात सुन कर उन्होंने समझ लिया कि उसे साधारण बुखार है, कोई गहरी बीमारी नहीं।

किन्तु अपनी उस बीमारी में, जब एक दिन तोता झोपड़ी में शान्त और मौन पड़ा कुछ सोच रहा था, और झोपड़ी के पुराने फूंस में आंखें देकर बेजाने ही बाहर की ओर खुले अन्तरिक्ष को देख रहा था, तभी बिहारी की बहू,

सहमी सिमटी हुई तोता के पास आकर बोली–"क्या बुखार आ गया ?"

बिहारी की बहू ने कल ही इस बात को जान लिया था कि तोता को बुखार है। पर तोता के परिचित जड़ स्वभाव ने उसे तोता के पास तक आने का साहस ही न दिया। किन्तु आज वह हिम्मत बांध कर आ ही गई।

तोता की समाधि भंग हो गई। छेदों से आंख हटा कर बोला––'नहीं, वैसे ही––।'

'वैसे ही !'––बिहारी की बहू बोली––'बुखार तो है, मुंह जो उतर रहा है। कुछ खाओगे।'

न मालूम तोता उस समय बोलना ही न चाहता था, या क्या बात थी कि अस्वाभाविक रूप में होकर कहा––'बुखार-उखार कुछ नहीं है। मैं कुछ नहीं खाऊंगा।'

'तो फिर––?'

'फिर क्यों...जाओ अपने घर बैठो।'

बिहारी की बहू निराश होकर चली गई। अपने यहां जाकर यह बहुत देर तक तोता की बात पर टिप्पणी करती रही। कभी कुढ़ती कभी छिपी भाषा में उसके

ऊपर नारी स्वभाव की अनमोल विभूति भी छोड़ती जाती।

... ...

स्वस्थ होकर तोता फिर पूर्ववत काम पर लगा। लेकिन इस बीमारी में एक बात नहीं हुई। तोता बिहारी की बहू से जितना अलग हटा, उसकी लड़की से उतना ही हिल मिल गया। चार-पांच साल की लड़की जैसे उसके रूप को देख कर डरी नहीं। जब वह झोपड़ी में पहुंचता, तब वह लड़की उसके पास आकर, कभी उसकी विशाल भुजाओं पर बैठती, कभी उसकी जांघों पर कूदती। इस प्रकार वह सदा तोता के साथ खेल किया करती। और जैसे तोता को भी इससे कोई परहेज नहीं था। उग्र स्वभाव और सब से अलग रहने की आदत के होते हुये भी तोता कुछ ही दिनों में लड़की से हिल मिल गया।

पहिले भी तोता बच्चों के लिए जंगल से कोई चीज लाता ही था पर उसमें नियमितता नहीं थी। मिलती तो ले आता, न मिलती तो न लाता। पर मानो अब उसके लिए लाना जरूरी हो गया था--बिहारी की लड़की के लिए दोपहर के ठाकुर के काम से निबट कर घर पहुंचता; जरा खांसता कि लड़की 'चाचा-चाचा' करती दौड़ आती। तोता उसे कभी घुड़कता, कभी उसके सिर पर हाथ फेरता

और जब उसे आशा से अधीर होते देखता, तो चादर के एक पल्ले की गांठ खोलकर, ककड़ी या मटर की फली, या जँगल में अपने हाथों भुने हुए चने के होले निकाल कर उसके सामने रख देता और कहता--"ले खा;--मर। बस खुश हुई ? जा मां के पास भाग !"

लेकिन लड़की जैसे तोता की इन घुड़की भरी बातों को पहचान गई थी। वह जाती नहीं थी। यह वहीं, तोता को छाती पर बैठ कर खाती। तोता खाट पर पड़ा गुड़गुड़ी बजाता रहता; वह उसके पास या ऊपर बैठ चप-चप खाती और बात करती जाती।

पर जब लड़की कई साल बाद अपनी उम्र पर आयी, ये तो सब बातें न रहीं। तोता ने भी इस तरह जँगल की चीजें लाना बन्द कर दिया। किन्तु लड़की को दिन में एक बार देख लेना, जैसे तोता के लिए जरूरी हो गया था। वह अनुभव करता, जैसे उसमें एक अलभ्य आनन्द है, जो उसने अब पाया है।

तभी एक दिन बिहारी की बहू बीमार पड़ी। कई दिन खाट पर पड़े रहकर उसे यह शङ्का हो उठी कि शायद यह न बचेगी। तब उसने चाहा कि वह किसी तरह तोता को उठा ले और कुछ कहे पर वह कैसे कहे, तोता तो

फाड़ खाने आता है। पर उसे तोता से बात करना ही था। वह इसका मौका देखने लगी। दिन में कई बार आहट ली कि कहीं तोता तो नहीं आया।

जब रात को तोता अपनी झौंपड़ी में आया; तो वह फिर भय से अपना बिचार छोड़ने लगी। पर जब तोता आध घण्टे तक गुड़गुड़ी बजाकर खाट से दिया बुझाने को उठा, तभी लड़की ने आकर कहा—"चचा, तुम्हें मां बुलाती है।"

तोता ने रूखे स्वर में पूछा—"क्यों बुलाती है मां ?"

लड़की तोता से इतनी खुश होने पर भी, डरते हुए बोली—"मां को बुखार है।"

तब तोता ने कहा—"चल।"

बिहारी की बहू ने तोता को आते देखकर ओढ़नी को सिर के आगे सरका लिया। तोता ने उसके सामने जाते ही पूछा—"क्या है, बिहारी-बहू ?"

"अब मैं चलने वाली हूं। तुम जानो।" बिना भूमिका के रुके, गुबार को बिहारी की बहू ने शब्दों में पार किया।

लेकिन तोता जैसे इस बात को सुनकर चिढ़ गया।

बोला--"वह कहो, किस लिए बुलाया है। मैं कौन हूं!"

बिहारी की बहू ने झट से कहा-"तुम सब कुछ हो, दुनिया नहीं जानती, मैं तो जानती हूं।"

तोता ने फिर अन्यमनस्क होकर पूछा-"तो कहना क्या है?"

बिहारी की बहू ने चांदी के कड़े निकालकर तोता की ओर बढ़ाते हुए कहा—"इन्हें किसी के यहां बेचकर जो कुछ मिले, मेरे देखते इस लड़की के फेरे फिरवा दो, बस यही चाहती हूं।"

तोता उसकी ओर घूरकर बोला-"इन कड़ूलों में ब्याह करेगी? बेवकूफ औरत! और लड़का?"

"लड़का मैंने तलाश कर लिया है।"

"कब करेगी?" तोता ने उसी स्वर में फिर पूछा।

"इन्हीं दो-चार दिनों में।"

तब बड़बड़ाकर तोता कड़ों को वहीं छोड़ अपनी झोंपड़ी की ओर चल दिया। खाट पर आकर वह अपने आप बोला-"लड़की का ब्याह करेगी!" कुछ देर बाद वह खाट से उठा और एक तरफ पड़े खुरपे को उठाकर

एक ओर की जमीन खोद डाली। वहां से एक हंडिया निकाली। दिये की रोशनी में चादर पर हंडिया को उंडेला, फिर गिना तो ढाई सौ। फिर बड़बड़ाया—"ब्याह करेगी!—इन्हीं चार दिनों में ब्याह करेगी!" खाली हंडिया को उसने एक ओर फेंक दिया और अपनी उस संचित राशि को लेकर बिहारी की बहू के पास जाकर बोला—"ले, कर ब्याह! काफी हैं? ढाई सौ हैं!" उसने सब रुपये बिहारी की बहू की गोद में डाल दिये।

बिहारी की बहू ने विस्मय के साथ रुपयों को देखा। फिर वह तोता के पैरों की ओर बढ़ी। उसने चाहा कि वह तोता के पैरों में अपना सिर रख दे। किन्तु जैसे ही वह उठी, तोता दरवाजे की ओर चला और अपनी झोपड़ी में आकर दिये को फूंक मारने के साथ चारपाई पर लेट गया। और अपने आप बोला—"ब्याह करेगी, लड़की का ब्याह करेगी...बदतमीज औरत!"

... ...

जिस दिन बिहारी की लड़की को ब्याहने के लिए बरात आई, गांव के सभी चमार खाने-पीने में शरीक

हुये। पर तोता इससे अलग था। वह उस दिन, दिन भर नौकरी करके रात को झोपड़ी में न जाकर जंगल में खेत के डोले पर जा सोया। उसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया। और अगर किसी का ध्यान गया भी तो उसने सोचा, चलो अच्छा हुआ। पर बिहारी की बहू को बहुत दुःख हुआ। उसने कई बार अपने रिश्तेदारों से तोता को खोज लाने के लिये कहा, पर वहां तो उसकी झौंपड़ी के आगे टटिया लगी थी।

दूसरे दिन तोता चुपचाप जाकर अपनी खाट पर लेट रहा। जैसे आज वह अपने आने की भी किसी को खबर नहीं देना चाहता। लेकिन बिहारी की बहू उसके आने की बाट देख रही थी। जब उसे पता चला, तो झट उसकी झौंपड़ी में गयी। उसने तोता के पास जाकर पूछा—"कहां थे कल तुम ?"

"क्यों, जंगल में था।"

"खाना तो खाते। सबने खाया, तुम अलग रहे !"

"मैं भूखा होता, तब तो ?"

"वाह, और भूखे थे ? यह तो तुम्हारा ही काम था।"

तोता नम्र स्वर में बोला--"मेरे ही खाने से क्या होता, बहू !"

इतने में लड़की एक थाली में बूरा और घी डला हुआ चावल लाकर बोली--"चाचा, लो खाओ।" तभी बिहारी की बहू चली गयी।

तोता थाली की ओर देखकर बोला--"ले जा, मैं भूखा थोड़ा ही हूं।"

यह सुन कर लडकी की आंखें सजल हो आईं। वह बोली--"तुम नाराज हो !"

तोता ने कहा--"कैसा नाराज ! जरा अलग बैठ।

"जो न बैठूं तो ? मरोगे ?"

"बेशऊर ! इतनी बड़ी हो गई, शऊर नहीं। अपनी मां के पास जा ! ले जा इस थाली को।"

लड़की जैसे थाली की बात भूल गई। बोली--"अच्छा चाचा, मुझे याद करोगे ?"

तोता बोला--"क्यों याद करूंगा तुझे !"

उसका गला भर आया । लड़की ने देखा, जैसे चाचा कहने के साथ रुक गया है। जाने क्यों रुक गया है ।

तभी तोता ने देखा, कि लड़की की भरी आंखें उसकी छाती पर टपक गई हैं । वह चौंक उठा और लड़की के दोनों कन्धे पकड़ कर एक बारगी उद्वेलित होता हुआ बोला—"तू जाती क्यों नहीं जा, मैं तुझे याद करूंगा। रो मत पगली कहीं की !" कहते-कहते उसने अपने चादर के पल्ले से लड़की की आंखें पोंछ दीं ।

उसी समय लड़की को पुकार पड़ी । उसने तोता की ओर देख कर कहा—"चाचा !"

तोता ने लड़की का सिर अपनी छाती से लगा लिया। उसने अपने गालों को लड़की के सिर पर रख दिया और बोला--"अपनी मां से कहना, चाचा भूखा नहीं है । समझी बेटी ?"

लड़की चली गयी। दूसरे दिन वह ससुराल भी बिदा कर दी गयी। जब रात को तोता अपनी झोंपड़ी में आया तो रोज की तरह उसे लड़की न दिखाई। तोता एक सांस लेकर खाट पर बैठा और फफक-फफक कर रो पड़ा।

सुबह उसने ठाकुर के पास जाकर कहा--"अब मैं काम नहीं करूंगा।" कोई भी नहीं जान सका कि क्या चाहता है तोता। तीसरे दिन वह झौंपडी में भी न दीख पड़ा। वहां एक सूनी खाट और दो-तीन मिट्टी की खाली हँड़िय पडी थीं।

... ...

बहुत दिनों बाद, जब जमाना बदल गया, लोगों ने देखा-तोता शहर में बाजार की सड़क के एक किनारे बैठा, अपने सामने जूते गांठने का सामान फैलाये, इधर-उधर चमड़े के टुकड़े रखे, अन्दर धँसे गाल, सूखी दुर्बल देह लिये एक बाबू की चप्पल गांठ कर पैसे लेते हुए कह रहा है—'बाबू, एक पैसा कम है। बड़ी मेहनत की है।"

गांव में अब भी कभी-कभी तोता का जिक्र आ जाता है।

जोहरा

पहाड़ियों के बीच बसे हुए एक गांव का बलूची अपने घर के बाहर चारपाई पर बैठा हुआ हुक्के के नैचे को बांयें हाथ में लिए, कभी दायें हाथ की उंगलियों से दाढ़ी में कंघी करता, कभी दम लगाता, और कभी मुंह फेर कर सामने के मैदान की ओर देखने लगता। बलूची वृद्ध हो गया था। उसके विशाल ललाट पर झुर्रियों का जाल बन गया था। उसकी तेजपूर्ण और बड़ी-बडी आंखें भीतर घुस गई थीं।

चारों ओर घने, काले बादलों का समूह आसमान पर छाया हुआ था। बलूची अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ झुकी हुई गर्दन को बार-बार ऊपर उठा आसमान की ओर देखता था आसमान के नीचे चीलें और अन्य परिन्दे ऊँचाई पर उड़ रहे थे। उन्हें देख कर जैसे उस

बलूची का मन भी अपने आप उन परिन्दों के साथ उड़ने को चाह रहा था।

उत्फुल्लता से भर एकाएक उसने पुकारा--'ज़ोहरा !'

ज़ोहरा उसकी लाड़ली बिटिया थी। उसने अब्बा की आवाज सुन कर झट घर के अन्दर से ही कहा--'आई, अब्बा !' और कहने के साथ ही वह बाहर निकल आई। आते ही आसमान की ओर देख मुस्करायी। फिर अपने अब्बा के कन्धे पर हाथ रख कर बोली--'क्यों, अब्बा ?'

अब्बा ने कहा--'देख, कैसे बादल छाये हुये हैं ! ये बिना बरसे नहीं जायंगे।'

ज़ोहरा ने खुश होकर कहा--"अच्छा है, अब्बा !'

'हां, क्यों नहीं अच्छा है ? पानी बरस जायगा, तो हमीं क्या बेचारे जानकर और परिन्दे भी नई जिन्दगी पा जायंगे ! हां, बेटी,' बृद्ध ने ज़ोहरा की ओर देखकर कहा-'कल हम हिन्दुस्तान के लिए रवाना होंगे। जाड़ा शुरू होते-होते वहां पहुंच कर कुछ तो जमा कर लेंगे।'

जोहरा कुछ कहना चाहती थी कि वृद्ध ने चारों ओर अधमुंदी आंखों से देखकर फिर कहा-'यह घर, यह

पहाड़ी मैदान आसानी से छोड़ते नहीं बनता। तेरी बात बात तो मैं नहीं जानता, पर मुझे तो इसके सामने दुनियां की कोई भी जगह अच्छी नहीं लगती। मेरी बेटी! हमारे लिए यह जगह बहिश्त से कम नहीं है! पर पेट ऐसा दुश्मन है कि हमें अपनी इस सुख की जगह को छोड़ने के लिए मजबूर करता है, और दर-दर घुमाता है। हां, तूने वह मूंगे संवार लिए न? उन्हें पिटारी में रख देना। देख, तेरी अम्मां ने एक बार अच्छे अच्छे मूंगे एक पिटारी में बांध कर रखे थे, उन्हें भी देख लेना। उसका इरादा तेरे निकाह के मौके पर उन्हें बेचने का था। उसे क्या पता था कि वह यों दो दिन बीमार रह कर मर जायगी, और अपनी बेटी ज़ोहरा को यों छोड़ जायगी!" कहते-कहते वृद्ध का स्वर भारी हो गया। बरबस ही उसने अपनी बिटिया के सामने उस उमड़ते हुए उद्वेग को रोक लिया, नहीं तो अभी पत्नी विछोह का घाव उसके दिल में ताजा बना था। अभी दो मास भी नहीं हुए थे कि जब उसने पत्नी की सलाह से हिन्दुस्तान में बेचने के लिए मूंगों और अन्य वस्तुओं को एकत्र करना आरम्भ किया था। उसकी पत्नी को अपनी

जोहरा के निकाह की फिक्र थी, इससे वह कुछ रकम जोड़ कर अपने इस बोझ से मुक्त हो जाना चाहती थी उसकी साध थी कि एक दिन मेहमानों तथा बरातियों का जमघट उसके घर पर दिखाई दे। उसकी यह भी इच्छा थी कि वह अपनी बेटी के निकाह पर ऐसा पुलाव बनवाये जैसा कि गांव में अभी तक नहीं बना था। उस गांव के बच्चे-बच्चे की दावत करे, और उन सबका आशीष अपनी बेटी के लिए पाये। वह वृद्ध से कहती थी, 'जोहरा चली जायगी, तो फिर हमारा क्या ? कहीं न कहीं गिरते-पड़ते बुढ़ापे की जिन्दगी बसर कर लेंगे।'

पत्नी जोहरा का निकाह करने से पहिले ही चली गयी। वृद्ध अकेला हो गया। उसके जीवन में कभी न दबने वाली एक ऐसी आंधी उठ गयी, जिसके कारण उसके मानस की रही-सही प्रसन्नता भी उड़ गयी। वह वृद्ध तो था ही, पत्नी के मरने पर तो जैसे उसकी कमर ही टूट गयी।

उसी समय जोहरा ने अपने अब्बा की उसकी मानसिक व्यग्रता को लक्ष कर बिल्कुल विपरीत भाव लेकर

कहा—"हां, हां, कल हिन्दुस्तान चल देंगे, अब्बा जरूर !" यह कहने के साथ ही बरबस उसमें एक थिरकन पैदा हो गई। और उसकी स्वाभाविक गति के साथ उसकी मानसिक उत्फुल्लता भी जाग्रत हो गयी। खुशी में इठलाती हुई वह घर के अन्दर गयी, और अपना दोतारा उठा लायी। वह एक चट्टान पर जा कर बैठ गयी। उसका अब्बा भी दोतारा सुने, और अपना मन बहलाये, कदाचित इसी उद्देश्य से वह उस सुहावने समय का सदुपयोग करने के लिए तैयार हुई। दो तारे के तारों को उसने ठीक किया। तब आप ही वर्ष भर पहले के हिन्दुस्तान के सस्मरण उसके मानस पर एक-एक कर चित्रित हो आये। आह्लादपूर्ण स्वर में वह होंठों में ही गुनगुनायी—"रूप !"

रूप एक ग्वाले का लड़का था, जो अपनी भैंसें चराता और बांसुरी बजाता था। लाहौर में कभी-कभी जब जोहरा की मां को दूध की जरूरत पड़ती, तो रूप जोहरा को दूध लाकर देता था। वह बालक रूप हँसता था, मुस्कारता था, और जैसे कुछ कहना चाह कर भी कह नहीं पाता था।

जोहरा की उँगलियां दोतारे पर चलने लगीं। उसके गाने का मधुर स्वर पहाड़ की ऊँची-ऊँची चोटियों से टकराने लगा।

उस बालक रूप को जोहरा ने कैसे-कैसे बढ़िया मूँगे उपहार में दिये थे, उसे उसका भी ध्यान आने लगा। जब वह लाहौर से लौटी थी, तो रूप उस दिन उसके पास नहीं आया था। वह क्यों नहीं आया, उससे क्यों नहीं आकर मिला? बस, इसी एक बात को ले, जोहरा चिढ़ गई थी, और बाल-स्वभाव के अनुसार क्रुद्ध हो कर रूप से फिर कभी न मिलने का प्रण कर लिया था। पर अब जब फिर हिन्दुस्तान चलदेना था, तो हठात् जोहरा को बार-बार रूप का ध्यान आने लगा। वह बांसुरी कितनी अच्छी बजाता था, और जोहरा उसे कितने चाव से सुनती थी। बालक रूप अब बड़ा होगया होगा। वह जोहरा को जरूर याद करता होगा। वह लाहौर जायगी, उसी सराय में ठहरेगी, और रूप से मिलेगी, ऐसी ही कल्पनाओं पर केन्द्रित हो वह युवा और पूर्ण विकसित हुई पाटल पुष्प-सदृश जोहरा गाने में तन्मय हो गयी। उस समय उन पहाड़ों के बीच में बैठी हुई वह ऐसी लग

रही थी, जैसे कोई वन-देवी देवता का आवाहन कर रही हो ।

दूसरे दिन वृद्ध बलूची अपनी बेटी और अन्य पड़ोसियों के साथ हिन्दुस्तान की ओर चल दिया। काफिला क्वेटा आ गया। दो-चार दिन उन्होंने क्वेटा के बाजार में कुछ बेचा, कुछ खरीदा। इसके बाद घूमते हुए लगभग एक साल के बाद उस काफिले का डेरा लाहौर में आ कर पड़ा।

लाहौर के बाजारों और मुहल्लों में जोहरा अपनी साथिनों के साथ घूमती और मूंगे बेचती। वह गोरी, युवा और सुन्दर मूंगे वाली जब अपने कानों के बड़े-बड़े बाले हिलाती हुई आवाज लगाती--"मूंगे लो, मूंगे, !" तो लोगों की कौतूहल-पूर्ण और भूखी दृष्टियां उसकी अल्हड़ जवानी पर टिक जातीं। उन लोगों की आंखें उसे घूरती, जैसे वह कोई अद्भुत पदार्थ हो। पर वह मूँगे वाली जैसे जान-बूझ कर भी इस बात को टाल जाती, और ऐसे ही लोगों से अपने मूंगे खरीदने के लिए अनुरोध करती, उन्हें प्रेरित करती, और मुस्करा कर उनसे कहती--"देखो, मेरे मूँगे अच्छे-अच्छे, गोल-गोल

यह कहने के साथ वह ढेर सारे मूँगे उनके सामने उँडेल देती, और तब तक उनकी आंखों में आंखें डाल कर वह मानो उन्हें खरीदने को विवश करती। फिर किसी बड़े और अच्छे मूँगे को हाथ में लेकर कहती—',लो, यह मूँगा! यह असली और खूबसूरत मूँगा!"

तब उन देखने वालों और खरीदारों के लिए जैसे बड़ी कठिनता का अवसर आ जाता। उन्हें यह सोचते ही ही न बनता कि वे मूंगा अच्छा है या मुँगेवाली, अथवा वे मूंगेवाली को देखें या मूंगे को। उनमें अधिांश ऐसे होते, जो मूगा देखने की आड़ में बस मूँगा वाली को देखते। उसके गोरे और गुलाबी गालों को निकट से देख कर वे जैसे एक अद्भुत रस का अनुभव करते।

लेकिन मूगे वाली का वह गोरा और लाल मुँह, उसकी वह बड़ी-बड़ी रसीली आंखें ऊपर से जितनी सुन्दर और मोहक दिखायी देती थीं, कदाचित अन्दर से उतनी ही कठोर थीं। लोग उसे देख सकते थे, पर मुँह से कुछ कह नहीं सकते थे, और न छू सकते थे।

एक दिन वह कन्धे पर झोली डाले बाजार में घूमती

चली जा रही थी। उसके कानों के बाले डोल रहे थे। तभी एक आवाज़ सुन कर वह एक दुकान की ओर बढ़ी, और उसके तखते पर झोली रख कर बैठ गयी। दुकानदार के कहने पर वह मूंगे निकाल कर दिखाने लगी। अभी अभी उसे बैठे पांच मिनट भी नहीं हुए थे कि उसके आस पास लोगों की भीड़ एकत्रित हो गयी। मूंगेवाली दुकानदार को तरह-तरह के मूंगे दिखा रही थी, और लोगों की बातें सुन रही थी। उस भीड़ में मूंगे वाली के लिए तरह-तरह की बातें उठ चली थीं। कोई कह रहा था, 'अरे, बदमाश है यह!' किसी दूसरे ने कहा, 'अजी, इनका क्या, बदोश खाना है। मूंगे बेचना तो एक बहाना है। असल में...'

सदा तरह उस दिन भी मूंगेवालीने अपने लिए इतना सुन कर भी उत्तर नहीं दिया। उसने उन लोगों की ओर देखा भी नहीं। हां, उसी समय जब एक जवान लड़का उसके बहुत निकट चला आया, तो उसने रुष्ट होकर कहा—"दूर खड़े होओ, दूर! देखता नहीं, छाती पर चढ़ा आता है।"

कमबख्ती के मारे उस लड़के के मुंह से निकल गया—'जो न हटूं तो?'

'तो !' हठात् मूंगेवाली के हाथसे मुंगे छूट गये। उसकी सलोनी आंखों में क्रोध के डोरे उभर आये, भौंहें चढ़ गयीं। वह लड़का संभले, कुछ कहे कि उस मुंगेवाली ने ज़ोर से उसके मुंह पर तमाचा मार कहा —'तो।' यह कहने के साथ ही उसने छुरा भी अपने झोले से निकाल लिया। पर अन्य लोगों ने उसे रोक लिया, नहीं तो उस छुरे का वार भी लड़के पर किये बिना वह न रहती।

मुंगेवाली का क्रोध जलदी शान्त नहीं हुआ। उस घटना के बाद उसने और कहीं जाने का भी विचार छोड़ दिया। निदान समय से पहिले उसने सराय में जाकर आने को बिस्तर पर डाल दिया।

अब्बा ने पूछा -- 'आज इतनी जल्दी क्यों चली आई, बेटी ?'

उसने कह दिया--'आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। सिर दुख रहा है।'

'अच्छा, अच्छा। रोटी खालो, तेरे लिए सालन बना रखा है। समझी ?'

उसने कुछ नहीं कहा। चादर मुंह ढंक लिया, और आंख बन्द कर बाजार में हुए झगड़े पर फिर सोचने लगी

नहीं कहा जा सकता कि उस दिन उसने अपने स्वभाव के प्रतिकूल किस प्रेरणा के आधार पर उस लड़के के तमाचा मारना अच्छा नहीं समझा। वह काम उसे नहीं रुचा। उद्दण्ड और स्वभाव को क्रोधी मूंगेवाली के लिये ऐसा करना कोई नई बात नहीं थी। वह उसके स्वभाव के अन्तर्गत बात थी। किसी को मारना, किसी पर अपने बल का सिक्का जमाना उसे पसन्द था। लेकिन आज ?

देर तक उसने अपने-आप को इसी मानसिक उलझन में फसाए रखा। इसी अवस्था में उसे नींद का झोंका आ गया। नींद में ही देखती है कि वह अपने पहाड़ी मैदान में दोतारे पर गीत गा रही हैं। सामने आकाश में बिजली चमक रही है। वह गाने में इतनी तन्मय है कि उसे आस पास की तनिक भी सुध नहीं है। उसी समय उसे एक आदमी की परछाईं दिखाई देती है, जो समीप आकर स्पष्ट हो जाती है। उसे देखते ही जोहरा चिल्ला पड़ती है-"रूप ?" रूप पास आकर कहता है—"हां, जोहरा, मैं ही हूं! कितने दिनों के बाद देखा है आज तुम्हें ? मैं तुम्हें बहुत याद करता था, जोहरा ?" जोहरा निहाल होकर कहती है—"मैं भी तुम्हें याद करती थी,

रूप ?" और यह कहने के साथ वह अपना सिर रूप की छाती पर रख देती है, फिर यह कहती है—"तुम्हें मेरा गाना पसन्द आया, मेरे प्यारे ?" रूप कुछ कहे कि उसका स्वप्न टूट गया। उससे आंखे खोलकर देखा तो, अपने अब्बा को पास बैठे पाया। उसे जागती देख अब्बा मुस्कराया। फिर बोला—"आज मेरी बेटी ने कोई मीठा सपना देखा है ? क्यों ? आ चल, रोटी खा ले।"

तब जोहरा ने जाने कैसे मन के साथ अंगडाई लेकर कहा—"चलो, अब्बा ?"

दूसरे दिन जोहरा ने गूंगों की झोली उठा तो ली, पर बेचने के लिये नहीं, बहाने-भाव के लिये आज उसने पूर्ण रूप से रूप तलाश करने की बात अपने मन में ठान ली थी। वैसे तो उस लाहौर के सप्ताह भर के आवास में जहां तहां उसने रूप को खोजा था। पर वह आज तक नहीं मिला था। आज वह रूप को जरूर ढूंढ़ निकालेगी। अपने निश्चय के अनुसार उसने कई बाजार और मुहल्ले देखे। बहुत में आदमियों के चहरे भी ध्यान से परखे। लेकिन जिस चेहरे की उसे तलाश थी, वह नहीं मिला। जब वह शहर के पश्चिम की ओर दूर तक निकल गई, और

चलते चलते थक भी गई, तो एक जगह जाकर अपना पसीना सुखाने और तनिक दम लेने के अभिप्राय से बैठ गई। वह किसी छोसी का भैंसों को बांधने का बाड़ा था। उस समय मुंगेवाली की सूरत देख कह कोई नहीं कह सकता था कि उसके पास भी सम्मान और अभिमान है, क्योंकि दीनता और दुख के चिन्ह उसके मुंह पर साफ दिखाई देने लगे थे। सहसा उस बड़े मकान से एक सुन्दर और सुसज्जित युवक निकल कर, उसके पास से ही आगे बढ़ गया। मुंगेवाली ने उसे देखा, और तत्क्षण ही हर्षातिरेक से वह पुकार उठी--'रूप!'

वह रूप ही था।' आवाज़ सुन कर वह ठिठक गया। मुंगेवाली ने अपना झोला संभाल उसके पास जा कर कहा--'मैं जोहरा हुं, रूप! भूल गया मुंगेवाली जौहरा को!'

रूप यह सुनकर मुस्कराया। वह कुछ अप्रतिम भी हुआ। बोला—'अच्छा तू मुंगेवाली जोहरा है। अच्छी है न तू!' कह कर वह फिर आगे जाने लगा।

मुंगेवाली ने यह देखा, और चकित हो फ़िर आगे कुछ कहना चाह कर भी नहीं कहा। उसने वहीं बैठ

कर अपना माथा पकड़ लिया। जिस बात का उसे स्वप्न में भी खयाल नहीं था, वही उसने वहां देखा, और सुन लिया। वह समझती थी कि रूप देखते ही दौड़ कर उसे छाती से लगा लेगा। फिर विह्वल होकर कहेगा-'जोहरा, तू आ गई। ओह, मुद्दत से मैं तेरी राह देख रहा था। एक एक दिन पहाड़ की तरह कट रहा था!'

कैसे इतना बदल गया, रूप? मुंगेवाली ने अपने आप कहा-'अब बड़ा बन गया रूप, मालदार हां! हां, अब वह पहली बातें भूल गया।'

उसी समय एक बच्चा एक आदमी की उंगली पकड़े मकान से निकला। जोहरा ने उस आदमी से पूछा—'यह किसका लड़का है।'

'रूपा लम्बरदार का।'

'अच्छा. अच्छा।' यह कहते उसने झोले से मुंगों की एक माला निकाली, और उस लड़के के गले में डाल दी।

आदमी ने पूछा-'यह क्या कर रही है तू!'

मुंगेवाली ने झोला उठा कर चलते हुये कहा-'कुछ नहीं!'

उस ओर गूंगेवाली का रोज रोज का आना जाना हो गया। वह सोचती कि रूप उसे भूल नहीं गया, बल्कि उसे भूल जाते को मजबूर किया गया। रूप पर किसी ऐसे शक्ति का जोर है, जिसने उसके मन और मस्तिष्क को बदल दिया है। रूप के पास पैसा आ गया है। पहले वह भूखा और कंगाल था, और अब वह पैसे वाला बन गया है। फिर वह सोचती कि रुपये सिवा भी कोई शक्ति है जिसने रूप को बांध लिया है। वह क्या है! स्त्री! पुत्र! हां गूंगेवाली ने इस शक्ति का भी अस्तित्व मान लिया है। परन्तु अचरज है कि उसके दिल में रूप के पैसे के प्रति भले ही ईर्षा का भाव उठा हो, किन्तु उसके पुत्र और स्त्री के प्रति उसने न कभी ऐसा है, न चाहा है। बल्कि, उसमें तो अब ऐसा भाव आ गया है कि रूप जितना भी फूले फले, उतना ही अच्छा है। वह रूप के योग्य नहीं है, वह रूप के योग्य नहीं है, वह उससे छोटी है। जाने किस प्रकार उसमें ऐसे विचार चक्कर काटने लगे हैं। उसके लिए कोई दिन भी ऐसा नहीं जाता, जिस दिन वह रूप के द्वार पर न जाती हो, और उसको तथा उसके बच्चे को न देख आती हो। लेकिन चूंकि रूप

उस से बड़ा है वह सोने का कंठा गले में डालता है, पैरों में मखमली जूते पहनता है, और सिर पर रेशमी दुपट्टा बांधने के साथ कुरता भीमहीन कपड़े का पहनता है, इसलिये अपने को हीन समझने वाली मूंगेवाली ने अब ऐसा स्वभाव बना लिया है कि रूप जहां दिखाई देता है, वह रास्ते से हट जाती है, अथवा वह किसी गली कूंचे में छिप जाती है। रूप जब उसे दिखाई देता है, तो न जाने कैसी भुली भुली सी वह हो जाती है। उसके मन में आता है कि उसे देखती रहे, बस देखती रहे।

अपनी इस धुन में मुंगेवाली ने जो अपने हृदय में जो व्यथा पाल ली; उसका परिणाम यह हुआ कि वह दिन-दिन पीली जर्जर होने लगी। उसके अब्बा की बूढ़ी आंखें जब अपनी बेटी यह दशा देखतीं तो चिन्तत और बेचैन हो जातीं। वह कहता-'जोहरा' यह मुझे क्या हो गया बेटी।'

जोहरा मन्द मन्द हंस कर कहती--कुछ भी तो नहीं; अब्बा।'

तू सूखती जा रही है, पीली पड़ती जा रही है; और कहती है कुछ भी नहीं।'

यह सुन कर भी वह लाड़िली बेटी अपने मोती से सफेद दांत बाहर निकाल देती और सूखी हंसी हंस देती। वह बार बार अपने वृद्ध अब्बा को सांत्वना देती और कहती --'मुझे कुछ नहीं हुआ है, अब्बा, कुछ नहीं।'

लेकिन उसे कुछ तो हुआ है, जिससे यह सूख रही है। अब पहले जैसा उत्साह भी वह अपने नहीं पाती है, वह चलती है, तो आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। पर वह विवस है। वह अपनी बीमारी का कारण जान कर भी, न उसे छोड़ पाती है, न उससे दूर हो पाती है। जब कभी उसका अब्बा देश लौट चलने की बात कहता है, तो वह टाल देती है। वृद्ध जब तक उसके निकाह की भी बात कहता है, तो वह जैसे छाती पर घूसा-सा खा तड़प जाती है और अपने अब्बा को घूर घूर कर देखने लगती है। वह अनेक बार कह चुकी है कि वह निकाह नहीं करेगी, नहं करेगी।

फल-स्वरूप एक दिन जो वह बिस्तर पर पड़ी, तो फिर नहीं उठ सकी। वह दिन-दिन रोग की भयंकरता में फँसती गयी। खांसी और बुखार से वह इतनी जर्जर बन गयी कि बस, हड्डियों के पंजर के अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं रह गया।

वृद्ध की दृष्टि में भी उसकी जिन्दगी पूरी हो गयी थी। वह बार-बार अपनी बेटी की पीड़ा को देख खुदा से उससे लिए दुआ मांगने लगा। जब एक दिन उसकी हालत ज्यादा खराब होगई, तो उसने अपनी रोती हुई आंखों को हाथों से ढंक कर कहा—"जोहरा, अब मैं तेरे लिए क्या करूं, बेटी ? क्या लाऊं ?"

उस समय हठात् बेटी के मुंह से निकल पड़ा—'रूप !'

'रूप ! रूप कौन ?'

'वही रूप लम्बरदार; मोरी दरवाजे वाला !'

'उसे बुला लाऊं ?'

'नहीं; नहीं; अब्बा ! नहीं; नहीं; ?

'तो फिर क्या चाहती है तू ?'

उसने कहा—"मेरी यह पोटली रूप को देना। और उससे कह देना; 'यह गरीब जोहरा की भेंट है। वह चली गयी। वह..."

इतने में उसे जोर की खांसी आयी। एक बार कलेजे पर हाथ रख कर तड़पी; और तत्क्षण ही आंखें उलट दीं।

वृद्ध ने चीखकर पुकारा--"बेटी !... जोहरा !"

जोहरा अब नहीं रही।

वृद्ध सिर पकड़ कर बैठ गया; और फूट-फूट कर रोने लगी।

दूसरे दिन वृद्ध ने पोटली रूप लम्बरदार के सामने जा कर रख दी। चकित हो रुप ने उसे खोला। उसमें बहुत प्रकार की कीमती चीजें सम्भवतः रुप की स्त्री; बच्चे और स्वयं रूप के लिए थी। वृद्ध ने कहा—"ये चीजें जोहरा ने तुम्हारे लिए ही दी हे। तुम उसे जानते हो न ? वह मर गयी। मुझसे यह सब तुम्हें दिनेको कह गयी थी।"

यह देख सुन रूप लम्बरदार के मुंह से वृद्ध के सामने जोहरा के मरने की बात पर सहानुभूति का एक वाक्य भ नहीं निकला। वे कीमती चीजें थीं, इसलिए वह उन्हें लेने से इनकार क्यों करता ? उसने उन्हें स्वीकार कर लिया जब वृद्ध चलने लगा, तो उसने जैसे बे जाने ही कहा—"तो जोहरा को क्या हुआ था ?"

वृद्ध ने इसका जवाब नहीं दिया। जवाब वह देता ही क्या ? वह बाहर सड़क पर आकर आकाश की ओर देख रो पड़ा।

प्रेम का मूल्य ?

"मैं मृत्यु और जीवन के साथ संघर्ष करता हुआ शय्या पर पड़ा था। लगता था जैसे निकट और दूर पर उठती हुई दर्द की आहें और कराहें, पास खड़ी पत्थर की दीवारों को हिला रही थीं, मैं उन रोगियों के बीच में एक रोगी था, वह एक मेडिकल कालेज का अस्पताल था।

अभी डाक्टर मेरे पास से गया था कि एक सेविका मिस मेरे पास आई और मुस्कराती हुई अपनी बाहें मेरे गले में डाल कर बोली—"उठो, दवा पीलो।"

मिस युवा थी, सुन्दरी थी। उसके मधुर होठों पर उछलती हुई मुस्कान को देखकर, पीड़ाओं को उस दुनिया में कोई भी शान्ति पा सकता था। किन्तु यह भले ही था, कि उस मादक नशे के मैं मर्म तक पहुंच गया था, पर वह मुझे प्रेरित कर सका हो, वह अपनी

मादक गन्ध से मुझे लुभा सका हो इसकी मैं एक क्षण को भी कल्पना न कर पाया था।

उसने अपनी कोमल बाहों का सहारा देकर मुझे बैठा किया और दवा की प्याली को मेरे होठों से लगाते हुए कहा--'पी जाओ, आंख मुंदकर पी जाओ इसे।'

आदेश के साथ ही, मैंने मुंह खोल दिया और उस हलाहल-सी दवा को एक ही सांस में पी गया।

तब फिर पूर्ववत लिटा दिया गया। कुछ देर के बाद मैंने कहा--'मिस रोज।'

वह मेरी चादर ठीक कर रही थी। सुनकर उसने मेरी ओर देखा। मैंने फिर कहा तुम्हारी इस सेवा का क्या पुरस्कार दे सकूंगा, मिस रोज! जीवन भर आभारी रहूंगा।'

अब रोज ने अपना काम समाप्त कर लिया था वह निकट आई और मेरे हाथ पर अपनी हथेली फेरती हुई बोली--'सबको अपने-अपने काम हैं बाबू, यह एक मेरा भी। ईश्वर न करे, आप यहां फिर आयें, अब आप स्वस्थ हो चले हैं।'

जाने मैं क्या कहने चला था कि रोज उन्त ही

उठी और मेरे पास के दूसरे पलंग की ओर चली गई। देखा, उस रोगी ने दवा को उलट दिया था। रोंज ने मुंह साफ कराया। फिर थोड़ी देर में उसने मेरे पास आकर कहा--'आज इनकी दशा खराब है। दवा नहीं पच रही है।' यह सुनकर मैंने चिन्ता से उस ओर देखा और अपने समुचे ममत्व को आवाज में लेकर पुकारा--'रमा बाबू.....'

रमाबाबू ने टूटते और ऐंठते हृदय से मेरी ओर मुंह किया। मैंने पूछा—'क्या दवा नहीं पची?'

रमाबाबू ने इसका उत्तर नहीं दिया--वह नहीं दे सके। किन्तु उस क्षण भर में जो उस तरुण व्यक्ति के मुंह पर जीवन के प्रति मोह और आसक्ति की प्रगाढ़ ममता व्याप गई थी, वह सचमुच बड़ी अधीर और व्यग्र थी। मैं निश्चल होकर उस ओर देखता रहा। जीवन-ज्योति क्षीण पड़ गई थी। जैसे बुझाने के लिए मानो काल की विकराल छाया निकटतर आगई थी। जो झांकी देकर उसे बुझाने में लगी थी।

मैंने कहा--'आपके सम्बन्धी अभी नहीं आये हैं; रमाबाबू! धैर्य रखें ईश्वर कुशल करेगा।'

और मैंने देखा; रमा बाबू पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा' तब मैं चुप रहा। जो स्वयं एक पत्र का सम्पादक है, उसे समझाने के लिए मेरे पास क्या था। पर मैंने देखा मेरी अन्तिम बात सुनने के साथ ही रमा बाबू का धैर्य फूट पड़ा। बड़ी कठिनता से उन्होंने कहा—'तार तो दिया है, जाने.....!' 'कहते उनका स्वर रुक गया। गला भर आया।'

तभी मिस रोज ने मुझे संकेत कर कहा–'अब न बोलो बाबू, यह उद्विग्न हैं। निश्चय ही इनकी श्रीमती प्रातः तक आ लेंगी।'

इसके कुछ देर बाद ही मैं सो गया था। रात के एक–दो के बीच का समय हो गया था। तभी यकायक मिस रोज ने मेरी चादर हटाकर कहा—'सो गये, बाबू ?'

मैं जाग गया। उसकी ओर देखकर बोला–'हाँ. नींद आ गई थी। क्यों ? तुम अभी यहीं हो ?'

'उधर देखो तुम्हारे पड़ौस में क्या हो रहा है। जाने कैसे भाव में रोज ने रमाबाबू की ओर देखकर धीरे से कहा।

मैंने जिज्ञासुभाव में उस ओर देख, साथ ही आतुर हो रोज से पूछा—'यह क्या मिस रोज ? यह सब क्या कर रहे हैं ? क्या जा रहे हैं रमा बाबू !...'

तब रोज ने विरक्ति और अवहेलनापूर्ण भाव को मुंह पर लाकर कहा—'रमाबाबू को जहां जाना है, उसे रोकने के उपचार हो रहे हैं।' और उसने मेरे कान के पास मुंह लाकर कहा—'रमाबाबू को उनकी इच्छा पर बपतिस्मा पढ़ाया जा रहा है बाबू, ईसामसीह इन्हें जीवन दें, इस लिए उसी से प्रार्थना की जा रही है।'

यह सुनकर मेरे मन में एक बारगी भचाल उठ आया कदाचित मैं स्वस्थ होता, तो तुरंत उस ईसाई के मुंह पर घूंसा मारकर कहता—'अरे ओ, मजहबी दीवाने, क्यों मौत को धोखा दे रहा है। जो मर रहा है, उसे क्यों झिंझोड़ रहा है, उसे क्यों चञ्चल बना रहा है, तू...।'

पर मैंने अपने को रोक लिया। रोज की ओर देख ईर्ष्या भरे स्वर में बोला—'चलो, तुम्हारा जातीय भाई एक और बढ़ा, मिस रोज ?'

रोज ने छूटते ही कहा—जो मर रहा है, अभी मर जायगा जो, उसे यह ईसाई क्या, शायद ईसामसीह भी

न जिला पाएगा। यह धोखा है। यह पाखण्ड है। कहते कहते रोज लाल हो गई, उसकी आंखें चढ़ गईं मुझे लगा, जैसे वह जीवन की समूची घृणा को आंखों में लेकर, उस दूर खड़े ईसाई को घूरती हुई, उसके मुंह पर अभी थूक देगी और उसे अभी फटकार देगी। और जब पादरी बाईबिल उठा कर वहां से चल दिया, तो उसने एक बारगी ठहाका मारकर मेरी ओर देखते हुए कहा—'आदमी ही आदमी को ठगता है बाबू। ऐसा ही आज।'

मैंने कहा—'आज बहुत जगीं। जाओ सो रहो तुम।

तब रोज मुंह लटका कर चली गई। मुझे लगा था, जैसे आज उसे बहुत वेदना मिली है। जो नई है और बे बात की है।

लेकिन अभी शायद वह अस्पताल के द्वार से बाहर हुई थी कि रात की सेविका ने घंटी बजाई। उसने रमा बाबू की चिन्तनीय दशा की सूचना डाक्टर को दी। डा० दौड़ आया। रोज भी लौट आई। उसी समय रात की सेविका रमा बाबू के मुंह पर झुककर कह रही थी—'ईसा मसीह को याद करो बाबू।'

किन्तु रमा बाबू ने जैसे इसे नहीं सुना था। वह बार-बार चौंक रहा था। वह बार-बार द्वार की ओर देख रहा था। जैसे आशा कर रहा था कि आएगा कोई। उसी अवस्था में उसने कहा--'आह! मेरी स्त्री सुशीला..... मेरा बच्चा, मेरी मां...कोई नहीं मिला कोई नहीं मिला कोई नहीं देख पाया, मैं किसी से भी नहीं बोल पाया। यह कहते बरबस ही रमा बाबू को रोना आगया। उसने चीख कर कहा--'ओह पादरी भी मुझे पागल बना गया है। उफ! उफ!.....'

रोज ने उनके पास जाकर कहा--'ईश्वर को याद करो रमा बाबू।

उसके बाद ही, डाक्टर का इशारा पाकर रमाबाबू को पलंग से उतार लिया गया था। तब सभी को सुझा दिया गया कि रमा बाबू नहीं हैं, वह चले गए हैं, मर गये हैं वह।.....

उस क्षण मेरे अन्दर से निकल आया। निरा अभागा कहीं का! राम। हाय। तब मैं रमाबाबू की स्मृति में डूब गया था और उसी में लय हो गया था।

मैंने अस्पताल छोड़ दिया, पर रमा बाबू के प्रस्थान की रात्रि का दृश्य अभी मेरे सामने था। तब की याद है जब मैंने रोज़ से कहा था—'इसी प्रकार तुम मुझे भी नीचे उतार दोगी, मिस रोज़! रमाबाबू के तो हैं कोई, पर मैं तो हूं ही जन्म का एकाकी!'

तब रोज ने बड़े आलोड़ और अल्हड़पन के साथ कहा था—'तुम कहां मरोगे। देखते हो अच्छे हो चले। और क्या मरना बुरा है कोई! कोई मरे, उसे कोई याद करे, मैं इसे भी जीवन मानती हूं।'

'पर मुझ जैसे को ऐसी कल्पना कहां सुहायगी, मिस रोज! जिसका आगे नहीं तो पीछे कौन!'

'बाबू.....'

'मिस रोज़, तुम जिस जीवन की बात कहती हो, उससे मैं दूर हूं, बहुत दूर! उसे नहीं पा सका, नहीं पा सका!'

रोज़ने अपने मुलायम हाथको मेरेहाथ पर रखा, उसने बड़ी भावनामयी आंखों से मेरी ओर देखा और तब उसने मेरे हाथ को दबाते हुए कहा—'भला जिसे पाना है, जो

पाना चाहता है, वह जरूर पायगा। सो तुम भी—तुम भी!'

रोज़ ने किस धरातल पर खड़े होकर अपनी बात को कहा उसे मैं नहीं समझ पाया, यह जानता था, रोज़ कुमारी है, ईसाई लड़की है और मैं ब्राह्मण। शायद मैं रोज़ जैसी कल्पना कर भी नहीं सकता था। मेरे सामने तो था कि रोज़ एक सुघड़ और मधुर परिचारिका है जो अपने रोगी को आराम देती है, अपनी मधुर बातों से उसका मन बहलाती है। जिस का काम ही यह है, कर्तव्य ही यह है, वह इसी बात के पैसे पाती है।

लेकिन जाने एक मेरे ही लिए रोज़ क्यों इतनी ममतामयी बन गयी थी। मैं घर आ गया, तो क्या मजाल कि जो मिस रोज किसी भी दिन बिना आये रह जाये। मैं अभी रोगी होकर भी दुर्बल अवश्य था। जब वह आती, बैठती, अनेक बातों से मेरा मन बहलाती तो उसके जाते समय मैं उससे कहता, तुम नित्य क्यों कष्ट उठाती हो, मिस रोज़! मैं तो जन्म का ही अभागा और एकाकी हूं। तब रोज जैसे विश्व

की सारी दया और ममता को लेकर मेरी ओर देखकर कहती—'तो इस रोज़ का ही कौन है। यह भी अभागी है। आज तक यह भी जीवन में शून्यता देखती आई है बाबू।.....'

इस प्रकार वह नित्य की तरह आती, बैठती और चली जाती, मैं अब स्वस्थ हो गया था और देखता था कि उसका वैसा ही पूर्ववत् आन जाना है, वह अविचल है। मानो वह एक ऐसी लीक पर आ गयी है, जो अमिट है और जिस पर से लौट नहीं सकती है। मेरे मित्रों का भी ध्यान इधर गया। उन्होंने हँसी में कहना आरम्भ किया—'तुम्हारी तरह सभी बीमार पड़ें, भाई! तुम भाग्यवान हो!'

मैं यह सुनता था और उपेक्षा से टाल देता था। पर जैसे कोई बात तो थी ही, जो मेरे ही पास थी, जो चार के रूप में रात दिन मेरे अन्दर डोलती थी। यह मुझे नहीं रुचा। मैं शनैः शनैः रोज़ के प्रति उपेक्षित हो चला। वैसे रमाबाबू की मृत्यु और उसके साथ खेले जाने वाले नाटक का दृश्य जब जब मेरे सामने आता मैं मूक बनकर मानो एक बारगी कांप

उठता। मुझे लगता, जैसे अपने गिरोह की एक यह भी नागन है मिसरोज, जो मुझे डसने चली है। इस प्रकार निरन्तर की व्याप्त घृणा और उदासीनता के कारण मैं उसके आने पर ये घर से ही कहलवा देता, मैं नहीं हूं कहीं बाहर गया हूं कभी उसके आने के समय स्वयं भी बाहर चला जाता। और जब हम दोनों का साक्षात होता तो मैं जैसे किसी अज्ञात नारी के सामने बैठा हूं, बस केवल दो---चार बात करता और कहता, अच्छा मिस रोज, मुझे अभी एक काम से जाना है, एक से मिलना है।

यह सुनकर रोज उठ लेती और मेरी ओर आकुल नेत्रों से देख धीरे-धीरे वहां से चली जाती, मैं देखता था कि रोज अवश्य ही कोई बात लिये है, जिसे कहना चाहती है, मुझे सुनाना चाहती है, जो नहीं कह पा रही है और उसे अन्दर-ही-अन्दर आकुल बना रही है।

मैं इसे देखकर भी न देखता; इसे टाल देता।

इतने में अकस्मात् मिस रोज का आना रुक गया, दस दिन, पन्द्रह, बीस, बात दो-तीन महीनों पार कर गयी। मैंने सोचा, चलो छुटा पिण्ड, उसे कोई और

अवलम्ब मिल गया है। शायद विवाहित हो गयी है, मिस रोज। गृहस्थिनी बन गयी है।

तभी एक दिन जब मैं कहीं जाने के लिए तैयार था, एक बुढ़िया मेरे पास आयी और बोली—'आप ही हैं ललित बाबू ?'

मैंने कहा—'हां मैं ही···'

'ओह जरा चलिये तो मिस रोज के पास। बस एक मिनट के लिए, वह मरने के निकट आ गई है।'

मैं इस पहेली को नहीं समझ पाया। इच्छा न होकर भी, मैं एक अलौकिक प्रेरणा से भर बुढ़िया के साथ हो लिया। रोज के घर पहुंचा तो यह देखकर सन्न रह गया कि क्या से क्या बन गयी है रोज। जैसे बदल गयी है। उसकी देह में कोई और आ गई है। रोज, वह नहीं है। सूखी, कंकाल और प्रेतिन-सी मिस रोज—ओह !

उसके पास बैठकर मैंने कहा—मिस रोज···'

रोज ने कठिनाई से मेरी ओर देखा। वह देखती ही रही। जिसकी आंखें गड्ढे में चली गयी थीं। गाल अंदर धँस गये थे। देह काली पड़ गयी थी।

'तुम्हें क्या हुआ मिस रोज़। तुम इतनी···'

कि देखा, रोज नहीं बोल पाई, उसकी आंखें रो पड़ीं, उसने मुंह छिपा लिया।

तब मुझ में जो कड़ाई थी, और रोज़ के प्रति उदासीनता थी, वह न जाने कहां बह गयी, मैं उसकी ओर झुका और उस रोती हुई को सान्त्वना देता हुआ बोला—कुछ बतलाओ तो, मिस रोज !

सुनकर पास खड़ी बुढ़िया ने कहा—रोज तपेदिक की बीमार है।

'ओह !' मैं छूटते ही बोला—'मिस रोज तुम ! तुम।'

रोज़ ने उन्हीं रोती हुई आंखों से मेरी ओर देख कर कहा—'बाबू अब छोड़ो इन बातों को। रोज की नाव किनारे जो लगी। अब उसी किनारे पर उतर जायगी। कुछ ही क्षण में, आजकल में ही किसी दूसरे लोक में चली जायगी; यह रोज—पर···पर···'

'हां, पर क्या, मिस रोज।' मैं आकुल और द्रवित हो गया था।

रोज ने फिर कहा—'देखती हूं रोक कर भी, मैं अपने को नहीं रोक सकी। इसीसे तुम्हें बुला पाई हूं। जो रोज जीवन भर तुमसे कुछ न कह सकी, वह अब कहेगी। अब जरूर कहेगी। नहीं तो मर कर भी शांत नहीं हो पायेगी, रोज। यह तड़फती ही जायगी। बताओ, तुम जिस रोज को न पा सके। जिसे अपना प्रेम न दे सके। क्या इस अन्त पर भी इस भीख को देकर रोज को निहाल नहीं कर सकोगे, तुम ?'

'तुम क्या कहती हो, मिस रोज !' मैंने छूटते ही आतुर होकर कहा।

'हां, बाबू, तुम्हारी रोज को यही बीमारी लगी है। यह इसी में मृत्यु के द्वार पर आ गई है। इसी में घुल-घुल कर नष्ट हो गई रोज। और तुम हो अपने पथ के पन्थी, जो नहीं देख सके, नहीं अपना सके, इस सेविका को, रोगियों की इस नर्स को। हां, ठीक तो है तुमने सोचा होगा यह तो काम ही है, इसका। पर औरत तो मैं भी हूं। मैं भी प्रेम और प्रेरणा की उपासक हूं। आह ! तुम्हें कैसे बताऊँ, तुम्हें कैसे

अपना हृदय खोल कर दिखाऊँ।' यह कहते वह फिर रो पड़ी। फिर बोली—'बताइये तो। कितनी दुर्भागिनी निकली यह रोज़। यह जीवन की एक भी इच्छा न पा सकी। जिस ओर चली थी, उस ओर न पहुंच सकी,—न पहुंच सकी।

मैंने अधीर हो कर कहा—'जो कहना है, उसे अब कहो, मिस रोज।'

सुनते ही रोज ने मेरी ओर देखा। उसने मेरे हाथ पर अपना हाथ रख दिया, हर्ष से आल्हादित होकर उसने छूटते ही कहा—'सच कहते हो। जो रोज़ चाहती है, वह तुम दे सकते हो। सच, जो अब भी दिया तुमने, तो रोज़ निहाल हो जायगी। यह मर कर भी स्वर्ग में चली जायगी। कहते हो, तो लाओ दो, अपने पैरों पर मेरा हाथ रखने दो। और कह दो तुम, मैं तुम्हें प्यार करता हूं, रोज़.....।'

मैंने चालित यन्त्र की तरह से कह दिया—'हां, मैं तुम्हें प्यार करता हूं। इस ललित ने जो प्रेम अपने जीवन में संजोया है, वह तुम्हें भेंट करता हूं, मिस रोज़।'

रोज ने खिलते हुए कमल की तरह से फिर कहा—'एक बात और, यह लिफाफा रखो। घर ही खोलना। यह भी तुम्हारा।' कहते उसने मेरे पैरों को पकड़ लिया, उन पर अपने सिर को रखते हुए कहा—'अब शान्ति से चली जायगी, रोज। अब जरूर जायगी, उड़ती हुई···प्रसन्न और हंसती हुई···'

उस क्षण मैं अपने को नहीं सहार सका। मैं रो दिया। मैं उसके दोनों कन्धे पकड़कर बोला—'अब तुम्हें नहीं जाना चाहिए। नहीं जाओ।'

तब रोज की सांस बढ़ गयी थी। प्रसन्नता में, उसे अटूट प्रफुल्लता में ही जैसे घुट गयी थी वह, उसी अवस्था में वह चिल्लायी—ललित बाबू। ल···लि···। और उसकी गर्दन एक ओर को ढुलक गयी। जैसे बंधे धागे से काट दी गयी, वह।'

'हां, रोज नहीं थी, वह मर गयी थी। वह अन्तरिक्ष की ओर उड़ गयी थी।'

बुढ़िया ने अपने सिर को धुनते हुए कहा—'बाबू हाय! हाय मेरी प्यारी रोज।' और वह झपट कर उसके पास ही गिर गयी थी।

बाद को जब रोज को दफना कर सबके साथ मैं भी घर वापिस आया और उस लिफाफे को खोल कर देखा तो दस हजार के चैक के साथ एक चिट पर लिखा था, 'जीवन की कमाई जीवन धन के लिए।'

●

अलबेली पान वाली

शाम को पांच बजे दफ्तर से आया, गर्मी मालूम हुई नहा लिया, जाड़े हुए तो मुंह हाथ धोकर, डेढ़ बालिश्त के शीशे को बाथ में ले, कँघे से बालों को सँवारता और बिना टोपी लगाये घर से निकलता। होटल में जाकर रोटी खाता। होटल की रोटी शायद मेरे भाग्य-निर्णय के हाथ गुँथी है, इसलिए कि मैं अविवाहित हूं। यह एक अभाव, जीवन का यह सूनापन, शायद यों ही चलता रहेगा। दुनियां में जहां टिका हूं, मानो वहीं मेरी सीमा है। होटल के नौकर-चाकर, कुछ रोटी खाने वाले मुझ जैसे मेम्बर ही मेरे साथी बन गये हैं। वही मेरी दुनिया हैं। कितनी प्यास थी, कितनी तड़पन थी भला मेरे उस जीवन में।

रोटी खा-पी कर सीधा चौराहे पर जाता। मैं पान का शौकीन नहीं, पर जेब में दो पैसा खर्च करना आवश्यक है, इतना भर अखरता भी नहीं। वह सामने चौराहे की

तीन दुकानों को छोड़ कर, मंगो तमोलिन की दूकान है, वही मेरा पान खाने का अड्डा है। अभी साल भर तो हुआ है इस दुकान को खुले। जीवन की इस दौड़ में जैसे बहुत-सी बातें घुल-मिल गईं, कदाचित यही हो, जो आज याद नहीं हैं; कितने दिन हुए इस अलबेली की दूकान पर आते।

और जैसे अलबेली भी पानों की पुश्त पर चूना लगाने की धुन में मेरे सरीखे जाने कितने, अविवाहित, आवारा, पान खाने की आड़ में उसके रूप के लोभी ग्राहकों के आने-जाने का कोई हिसाब-किताब नहीं रख पाती।

... ...

मैं वहां से पान खाकर एकदम न चल पड़ता। भीड़ होती तो खड़ा रहता और यदि भीड़ न देखता तो दूकान से सट कर अलबेली से बात करने लगता। मुझे याद है, जब पहले-पहल अलबेली की दूकान के प्रति आकृष्ट हुआ तो झिझक थी, शर्म थी, पर आज कहां है वह। आज मैं भी अपने को निपुण ग्राहक देखता हूं। सभी की तरह मेरे पास भी बात है, मैं भी कुछ लिये हू।

अलबेली कोई बीस-पचीस साल की होगी। रंग गोरा, बड़ी-बड़ी आंखें; सच, जैसे शराब से भरी हों। और जब रंगीन साड़ी, आंखों में सुरमा, माथे पर टिकली और पान से रचे हुए ओठ--हां, इन्हीं सबके साथमंगो बैठती, तो मजाल है किसी की जो बिना अलबेली को देखे निकल जाय। दूकान पर भीड़ है और अलबेली का पानों पर चूना लगाना और तेजी पकड़ गया है। उसकी दूकान पर कभी कालेज के शौक़ीन विद्यार्थियों को देखता, कभी आफिसों के बाबुओं को; कभी खद्दर-धारियों को और कभी गुण्डों को—मेरी भला क्या हस्ती। पर जब देखता, यह सब मेरी-सी चाह लिये हैं, तो सोचता कितनी भाग्यवान है अलबेली जो सभी को अनायास ही अपने पास बुला पाती है। वह विजेता है, वह सफल है। और मैं? जैसे सभी में रिल-मिल कर नकार हो गया था—जिसका कोई भी अस्तित्व नहीं था।

मैंने जब कभी कहीं से पान खाया, तो सदा यही शिकायत रही—चूना ज्यादा है या कम। पर वह हंस कर, न जाने किस कला के साथ देख-भाल कर पान देती, जिसके लिए क्या कभी कहा जाता? कोई भी शिकायत

करता कि अलबेली चूना लगाना नहीं जानती। आप दूकान पर जाइये, जेब से पैसा निकाल कर रखिए, तभी सुनेंगे आप, बड़े धीमें स्वर से मधुर, मुस्कराती और हंसती हुई आंखों के साथ आप से पूछा जायगा--'बाबू पान' ?

और तभी आपकी स्वीकृति पाते ही अलबेली के मुलायम हाथों में पकड़ी हुई चूने की डण्डी पान की पुश्त पर बड़ी तेजी के साथ फिरना आरम्भ हो जायगी।

... ...

इस प्रकार अलबेली की दूकान का पान खाना भी जीवन का एक कर्म बन गया था। सुबह को जब दफ्तर जाता तब, शाम को रोटी खाता तब, और घूम कर आता उस समय। इस तरह दूकान पर जाता और इस बहाने के अन्दर छुपी अपनी लालसा को बरबस पूर्ण करने की चेष्टा करता और अनुभव करता अलबेली की वह मदभरी आंखें, वह प्रेरणा भरी मुस्कराहट सचमुच ही जैसे मेरे लिए एकान्त धरोहर बनती जा रही थी!

मैं सोचता--क्या तुम्हें प्यार करती है, अलबेली सच, कुछ कहना चाहती है, पर तुम समझे ही कहां उसकी आंखों की मौन वाणी को; वह तुम्हारे लिए अर्पण है।

कई बार ऐसा हुआ मैंने पान लिया और चल दिया। दो कदम बढ़ा नहीं कि अलबेली का बोल कानों में पड़ा बाबू।'

तभी मैंने लौट कर उसकी ओर देखा।

तब वह बड़े संयत स्वर में कहती—'पांच का नोट दिया और बाकी पैसे छोड़ दिये!'

उस क्षण, जाने कैसा बन जाता मैं। शायद कुछ झेंपता और मुंह पर आश्चर्य का झूठा सा अभिनय लाकर पैसे ले लेता।

अलबेली ज़रा-सा हंसती, मेरी ओर देख कर कहती—हां; नहीं लिए बाबू, यह लो। भला कोई भूलता है ऐसे।'

ऐसी दशा में मैं तत्क्षण ही आगे बढ़ जाता और राह में सोचता—तुम मूर्ख हो। क्यों जाते हो तुम। चले थे उसे रुपये देने। वह तुम्हारे चंगुल में रुपयों से आ जायेगी, क्यों?

सचमुच ही उस क्षण मैं खो जाता और लगता, जैसे सारहीन होकर मैं कोरा दोन बन गया हूं।

पर जो अलबेली की दूकान पर फिर न जाने की बात थी, वह यों ही आनी-जाती। जब दूसरे दिन ही उस ओर से निकलता, अलबेली से आंखें मिलतीं कि सीधा दूकान पर। तभी अलबेली मुस्कराती हुई पानों की गड्डी में से करारा-

सा पान निकालती और उसे हथेली से साफ करने के साथ ही लगाना शुरू कर देती।

ऐसा एक हीं बार थोड़े ही हुआ कि उसकी दूकान पर दस या पांच का नोट देकर फिर वापिस ले चुका हूं। जिसे अलबेली ने सदा ही, दबी-सी झिड़की में ममता-भरी आखों में प्रतारणा की पुट लिए मुझे वापिस किये।

पर मेरी जो दशा थी—जो बात थी मन की, वह एक दिन भी नहीं बदली। वह जैसी थी वैसी ही बनी चली।

... ...

एक दिन अलबेली की दूकान पर जा खड़ा हुआ। कोई नई बात नहीं थी। उस समय मैं ही अकेला ग्राहक था। तब अलबेली ने पान लगाना शुरू किया और मेरी ओर देख कर कहा—आज सुस्त क्यों हो बाबू?

मानो मैं सचमुच सुस्त हूं। क्यों सुस्त हूं, जैसे यह भी जानता हूं। हंसी के भाव में बोला—कहां सुस्त हूं अलबेली तुम्हें लगता है।

लो, पान।

मैंने पान ले लिया। शायद कुछ कहने चला था कि देखा एक और ग्राहक आ गया। तब मैं चल दिया। घर आया। चारपाई पर लेट गया था और सामने प्रश्न

था–देखो तो कैसी है यह अलबेली। एक दिन भी नही खुली। इसे अब तक भी नहीं समझा।

तभी सामने आयी––वह दूकान के एक ओर बैठी हुई अलबेली पान लगाती हुई, कुछ कहती हुई, मुस्कराती हुई। वह साड़ी से छनती हुई उसकी कमर पर लटकी बालों की लटें। हां इन सभी का तो मोहताज बन गया हूं

और मुझे लगा जैसे मन उन्मना-सा सभी कुछ समेट कर बाहर गिर आना चाहता है। उसमें टीस है और वह क्षुब्ध है। प्रताड़ित है।

मैंने कहा–भला यह भी कोई बात है। तुम दीवाने हो गये हो। और कहने लगा आखिर इस बात का कोई अन्त भी है। तुम से और भी आते हैं ऐसे ही ललचाये-से, कुछ खोये-से। भला जिसकी जड़ है, न शाख। है तो बाजार की तमोलिन, और तुम उसी से प्रेम करने चले हो –हुश।

लेकिन इस 'हुश' मात्र से मुझे कोई ठौर नहीं मिलता था। मैं जहाँ था, वहाँ से एक दिन भी नहीं डिगा।

दूसरे दिन जब दूकान पर मेरे सिवा और कोई नहीं था तो उस ने पान लगाते हुये मुझसे पूछा—'तुम कहां के रहने वाले हो बाबू ?'

मैंने कहा--मेरठ।'

उसने फिर उसी स्वर में पूछा--'बहू यहीं है ?'

मैंने कहा-'अभी ब्याह ही नहीं किया है।'

'अभी नहीं किया ब्याह ?'--जैसे उसे अचरज हुआ हो।

उसने फिर स्नेह सिक्त स्वर में कहा—'बाबू' मां है ?'

'नहीं।'

'अरे। तो तुम अकेले हो बाबू !'--कहते वह करुण और दीन सी मेरी ओर देखने लगी।

तभी मैं चलने लगा। उसने कहा--'क्या चल दिये बाबू ?'

मैंने कहा—'हां, घूमने जाऊंगा।'

'अच्छा, लौट कर आना।'

× × ×

पार्क में जाकर जैसे बैठा कि व्याख्यान शुरू हुई-आज वह बड़ी दीन दिखाई दी, आमन्त्रण भी दिया है। पर ऐसा तो वह जाने कितनी बार कह चुकी है। देखती भी है सांस भी भरती है, मुस्कराती भी है, पर इनका मोल क्या। वह दूकानदारिन है।

० ● ०

इस प्रकार मन दौड़ लगा रहा। था पार्क से फिर घर

की ओर चला, जैसे अब मैं सचमुच उदास हो चला था। मन में एक आंधी-सी उठ गई थी, जो बरबस व्याकुलबनाये थी। घर आकर जाने कितनी देर खाट परपड़ा रहा। एक पीड़ा-सी बार बार जैसे अन्दरही अंदर उठ चली थी। पास के मकान की घड़ी ने ग्यारह बजाये, पर मैं जगा था। तब उठा, कमरे में इधर उधर घूमता रहा फिर जाने क्या सोचा कि मकान से चल पड़ा। शायद चाहा था, आज क्यों न कहा जाय उस से। हां, जरूर कहूंगा आज—'ऐ अलबेली बता तो कौन है तू। तूने एक दिन भी समझा क्या कभी देखा भी मुझे जो सचमुच पागल हो गया हूं। आओ हम तुम दोनों एक दूसरे से मिल जायं अलबेली ?'

वह क्या कहेगी, उसका क्या उत्तर होगा यही जानने के लिए जैसे आज इस खेल का अन्त करने के लिए मैं शीघ्रता से उसकी दूकान की ओर बढ़ चला। दूर से देखा, वह दूकान बन्द कर रही है, और जब वह एक ओर को चली मैं भी उनके पीछे हो लिया कुछ दूर चलने पर वह एक गली में घुसी और उसमें दो-तीन मकान के बाद ही एक मकान में चली गई। मैं तुरन्त

ही उस मकान के सामने पहुंचा। मकान में उजाला था मैंने किवाड़ों के सूराख से कान लगाये।

मैं अभी किवाड़ों से लग कर खड़ा हुआ था कि कानों में सुनाई पड़ा--'कैसी तबियत है बाबूजी।'

'आज तो कुछ अच्छी रही। तुम आ गईं ?'

'अच्छा, लो दूध पिओ।'

मैं उसी तरह खड़ा था। शायद भूल गया था इस बात को कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा। और जैसे मेरी इतने दिन की कमाई पर पानी फिर रहा था। मैं ऐंठने लगा था तभी फिर 'सुना—मिन्नो, सो जाओ अब।'

'जरा पैर ही दबा दूं। जिससे आपको नींद आ जाय'। अलबेली ने कहा।

मेरे सामने जैसे अन्धकार और गाढ़ा होता जा रहा था। उसी क्षण मुंह से निकला—औरत, बदजात कहीं की! और एक डाह-सी, ईर्षा सी, एक भयंकर जलन सी उस आदमी के लिए उठी, जिसके लिए अलबेली मेरे सामने ही, अपने को समर्पित किये थी।

तब उसी आत्मग्लान में डूबा मैं वहां से चला। उस रात शायद रात भर ही मैं इस जाल की गांठ-गांठ सुल-

भाता रहा। अपनी मूर्खता पर हंसता भी रहा और जलन सी लेकर खाट पर पड़ा ऐंठता भी रहा।

० ० ०

दूसरे दिन शाम को फिर उस दूकान पर गया। आज मैं उसे नये सिरे से समझने चला था। दूकान पर आकर बातों के प्रसंग में ही मैंने पूछा—'तुम्हारे पति हैं अलबेली ?'

इस प्रश्न को सुनते ही जाने कैसी सरलता के साथ उसने मेरी ओर देखा। तभी उसने कहा—'चूड़ियां नहीं, देखते बाबू।'

'तभी तो पूछा, कहां हैं वे आजकल।'

जैसे उसको यह सब नहीं रुचा। उसने जिज्ञासा के भाव में कहा—'भला यह सब क्यों पूछते हो बाबू ?'

'वैसे ही, बुरा लगा क्या ?'

'न, पूछो मत। मेरे पति हैं, बस यही काफी है।'

मैं चुप रहा। पान लिया और एक ओर को चल दिया। पर पग मुझे उसी गली की ओर ले गए। वहां पहुंचकर मैंने देखा उसका द्वार खुला था। अन्दर सामने ही चार-

पाई पर एक बीमार था। उसने मेरी ओर देखा। एकाएक मुझे मकान में देखकर उसने कांपते और क्षीण स्वर में पूछा--'कहिये क्या काम है ?'

मैंने तुरन्त कहा—'क्षमा करें, मैं धोखे से चला आया आपके मकान में।'

वह फिर पूर्ववत स्वर में बोला--नही नही क्या हर्ज है बिराजिए।

पास ही कुर्सी पड़ी थी मैं बैठ गया। पूछने लगा--'आपको क्या रोग है ? आप तो बहुत ही दुर्बल हैं।'

उसने कहा--'दुर्बल क्या, मरने वाला हूं महाशय।' तभी उसने फिर कहा—मैं दो वर्ष का रोगी हूं। अब मृत्यु यात्रा की समाप्ति निकट है।

मैंने आतुर होकर पूछा-'आप अकेले हैं ?'

'नहीं मेरी पत्नी हैं।'

मैं बैठा था लेकिन उसके शरीर की बदबू नाक में भर रही थी। मैंने पूछा--'आप किसका इलाज करा रहे है ?'

'यह सब पत्नी जानती है। इतना जानता हूं कि चार रुपये रोज डाक्टर और दवाइयों में दिये जाते हैं।'

तब जाने कैसी अज्ञेय भावना के साथ मेरा मन एकबारगी दूसरी दिशा की ओर फिर गया। मैं अचरज भरा उस मरीज के मुंह की ओर जगह जगह बंधी पट्टियों की ओर और मांस तथा रक्त-हीन देह की ओर देखने लगा। फिर टटोलने की इच्छा में उससे पूछा—इस समय आपकी श्रीमती नहीं हैं क्या ?'

उसने दृढ़ और संयत स्वर में कहा—दुकान पर।

मैंने फिर पूछा—आप पहले क्या करते थे ?

अध्यापकी।

उसके बाद मैंने उठना चाहा। उसने कहा--मेरे लिये कोई आज्ञा कीजिये।

उसने मेरी ओर करुणा की दृष्टि से देखकर कहा--भाई कृपा आपकी।

नहीं-नहीं, मैं आपके पास आया करूंगा। आप अधिक खिन्न हैं, मुझे आना ही चाहिये आपके पास। एं, यह क्या ! आप रोते हैं बाबू, मैं भी आपकी तरह का आदमी हूं, आप ही का भाई। मन को शान्त कीजिए।

तभी उस व्यक्ति ने अपनी भरी आंखें पोंछ

लीं। उसने मेरी ओर देखा जो जाने कैसी याचना भरी ममता उसकी आंखों में व्याप गई थी, तब वह बोला—बांबू अब अन्तिम सांस गिन रहा हूं। कोई भी साथी नहीं है मेरा। स्त्री जो बेचारी आज अपनी सीमा को लांघ कर मेरे लिए संलग्न है। यह देवी है। आप पधारेंगे, अहो-भाग्य मेरे, मुझे शान्ति मिलेगी।

उसके बाद मैंने नमस्ते किया और चल पड़ा।

राह में फिर अलबेली की दुकान आई। पर उसके पास नहीं गया, जैसे पैर ही नहीं चले। तब ओं अलग से मैं देखने लगा क्या यही है वह। वह आंखों में सुरमा, यह माथे पर टिकली। हां यह इसका बनाव-शृंगार इसी लिये है, सब कुछ। मैंने एक सांस भरी और तभी बोला--अरी अलबेली तू! और मेरी आंखों के आगे जैसे निरा शून्य फिर गया! जैसे वह लिप पुत कर मांस का एक पिण्ड बन गई थी जो मेरी ओर बढ़ चला था, जो चीखता आ रहा था—बाबू। हां मैं हूं अलबेली। लो चाहो इसे। और वह खिल खिलाकर हंस पड़ा पिण्ड! वह उछला, किलकिलाया और वहीं पत्थर पर एक बारगी उछल कर फैल गया। जहां कि लाल लाल खून के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रह गया था।

मैं चिल्लाया। उसी क्षण एक ओर को झपटा कि विच्छिप्ति में बिजली के खम्भे से टकरा गया। मैं चीख पड़ा। माथे से खून निकला और वह सब कपड़ों पर फैल गया। मैं शायद फिर भी घर की ओर भागता,कि राहगीरों ने पकड़ा, उन्होंने संभाला और उसी भीड़ के साथ अलबेली की दूकान पर ला खड़ा किया। लोगों ने मेरा खून धोने के लिए पानी लिया और उसने मेरी ओर देख कर पुकारा बाबू।

अलबेली।'

'यह क्या हुआ बाबू?'

किसी ने कहा--देख कर नहीं चले, खम्भे से टकरा गये।'

पर मैं सोच रहा था, अब भी वही है अलबेली। उसकी आंखों में वही मधुरता है, वही आकर्षण और दीनता है। तभी उसने अपनी धोती का छोर फाड़ कर,एक आदमी को देकर कहा--'लो, बांध दो पट्टी इसकी।' और उसने जाने कैसी अपनत्वता भरी वाणी में कहा-'भला कहीं ऐसे चलते हैं, बाबू!'

मैंने उसकी ओर देखा और मर्माहत की तरह सिर झुका लिया।

बाद में उसने कहा–'घर कितनी दूर है, मैं चलूं साथ ?

'न, बहिन।'––और चाहा कि मैं अपने सिर को उसके चरणों में झुका दूं, पर ऐसा न हो पाया–नहीं कर पाया।

पर अब नियम बदल गया था। अब अलबेली की दूकान पर जाने की बात नहीं थी। अब उसके घर जाता। उस बीमार को जिसने सोच लिया था–जिसे विश्वास हो गया था कि वह नहीं जायेगा, नित्य गीता जाकर सुनाता।

एक दिन जब दफ्तर को चला तो देखा कि अलबेली की दूकान बन्द है। कुछ ठिठका। सोचा, क्या बात है आज ! हां, कल रोगी की दशा भी अच्छी नहीं थी। आत्मा कांप गई मेरी, उन्हीं पैरों लौट पड़ा।

गली में जाकर जैसे ही मकान के किवाड़ों को हाथ दिया, उन्होंने अपनी बाहुएं खोल दीं। अन्दर गया। किंतु यह क्या, अलबेली पगली-सी, कमर पर सिर के बाल छितराये, रोगी की ओर झुकी है।

उस समय मैं भूल गया कि क्या कहेगी वहां पर मुझे देखते ही वह चौंकी और शायद रोगी न बोलता, तो वह निश्चय ही कुछ कहती, तभी रोगी ने कहा–'जिन्हें तुम रोज पूछती हो, वह यही बाबू हैं।'

अलबेली ने कुछ नहीं कहा। उसने फिर मेरी ओर देखा, जैसे उसे कोई शङ्का थी, जो दबाये थी।

तभी मैंने कहा–'मैं भी अलबेली बहिन के पानों का खरीदार हूं बाबू जी, जो आज जाना है।'

उसके पति ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा–'भिन्नो, सचमुच ही यह तुम्हारे भाई हैं।'

तभी उसने मेरी ओर देख कर कहा–'बैठिए, बाबू।'

उन्होंने कहा–'मेरे साथ अपनी बहिन को भी आज गीता सुना दो बाबू।'

मैंने गीता उठा ली। वह वहीं एक ओर बैठ गई। जब एक-डेढ़ घण्टे बाद मैंने गीता रखी, तो तश्तरी में पेड़े लाती हुई वह बोली–'कथावाचक पण्डित प्रसाद चाहते हैं, सो लीजिये आप।' कहते हैं वह हंस दी। मेरे साथ उसके

पति भी हंस पड़े।

उस दिन उसके पति की जगह अलबेली को आने का वचन दे कर, मैं खुशी-खुशी दफ्तर की ओर चला। कितना प्रसन्न था मैं—कितना सुखी।

० ० ०

कुछ दिनों मैं अलबेली के पति बाबू इन्द्रभूषण चङ्गे हो चले। स्वस्थ होने पर उन्होंने फिर अध्यापकी शुरू करदी। उसचिर-परित अलबेली की दूकान पर, उसकी जगह एक शौकीन लड़का बैठता है।

कई बार अलबेली ने मुझे बाबू इन्द्रभूषण के द्वारा बुलवा भेजा; पर मैं जाना चाहकर भी नहीं जा पाता। ऐसा क्यों है; शायद इसे जीवन के अन्त तक भी समझ पाया तो सन्तोष होगा मुझे।

वह पापी था ?

राजीव अपने एक मित्र की दूकान पर बैठा था।

दुनियां की गति और मनुष्य के आदर्शों पर वार्तालाप चल रहा था। दोनों मित्र एक मत होकर कह सुन रहे थे। इधर उधर चल कर बातचीत का सिलसिला मनुष्य के आर्थिक विकास पर आ गया था। वे कह रहे थे कि इस समस्या ने मनष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया है। वह दीन और मोहताज बन गया है।

तभी राजीव की निगाह एक व्यक्ति पर पड़ी। उसे उसने तुरन्त ही पहचान लिया। कभी जब वह एक होटल में खाना खाता था तब वह भी वहां आता था। बात होगी कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व की। राजीव ने उसे देखते ही अपने मन में कहा—'अरे' यह तो वही बाबू है!···बहुत दुर्बल और दीन हो गया है अब!'

देखा उस बाबू के पैरों में जो जते हैं, वे पुराने और फटे हैं। जो कोट उसने पहन रक्खा है, उस पर भी

धूल जमी है, और वह आस्तीनों और अन्य कई स्थानों पर फट चला है !'

इतने में बाबू दूकान के सामने आगया और आगे निकलने लगा। तभी राजीव ने पुकारा—"बाबू साहब !"

बाबू ने मुड़ कर देखा। उसने जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—"आपने मुझे बुलाया था क्या ?"

"हां' आप ही को। आपने नहीं पहचाना मुझे ?'

तब बाबू ने कहा—"ओफ ! हां, आप राजीव बाबू ! कहिये आप प्रसन्न तो हैं !"

राजीव ने कहा—'जी हां आपको कृपा है ! आइये बैठिये !"

बाबू आकर बैठ गया।

राजीव ने फिर कहा—'आज आप बहुत दिनों के बाद दिखाई दिये ? बदल भी गये हैं बहुत बूढ़े भी हो चले हैं।'

यह सुन कर बाबू के मुंह पर मुस्कराहट आ गई। उसने राजीव और उसके मित्र की ओर देखा, और तब एक दृष्टि दूकान पर डाल कर कहा—"ज़माना बदल गया, राजीव बाबू ! आप भी जाने कितने दिन बाद दिखाई

दिये हैं आज ! बताइये, आप कहां-कहां रहे ! एक मुद्दत हो गई उस बात को, जब आप होटल में मिलते थे ! बड़े ही खुशमिज़ाज थे। उस होटल के जितने ग्राहक थे, उनमें एक आप ही तो जिन्दादिल थे। तब से नहीं मिले आप। एक युग की बात हो गई !"

राजीव ने पूछा—"आपकी श्रीमती तो प्रसन्न हैं ? अब कितने बच्चे हैं आपके ? मुझे अब भी याद है आपका प्रेम-पूर्वक व्यवहार। आपके विवाह के लड्डू भी खाये थे और फिर श्रीमती जी के हाथ का भोजन भी कर आये थे एक दिन। वे दिन ही अनोखे थे, राय बाबू। अल्हड़पन और यौवन के उभार का युग था, जो अब लोप हो गया, जो परिस्थितियों की चक्की में पिस कर चूर-चूर हो गया ! आज आप मिल गये; धन्य भाग्य ! अक्सर मुझे आपकी याद आती थी। और तो कुशल मंगल है सब ? आज कल कहां हैं आप ? तब तो आप एक चाय की कम्पनी में थे। अब भी वहीं हैं ?'

राय बाबू ने कहा'अब वहां नहीं हूं।"

'अब कहां हैं ? कोई अपना काम कर लिया है ?'

लगते तो हैं आप ऐसे, जैसे गृहस्थी में पूरी तरह फंस गये हैं।'

राय बाबू ने इस बार भी राजीव और उसके मित्र की ओर देखा। तभी मित्र ने सिगरेट-केस उसकी ओर बढ़ा दिया। राय बाबू ने एक सिगरेट ले ली और राजीव से पूछा आपका परिचय ?'

राजीव ने बताया— आप मेरे मित्र हैं। नाम है सुशील कुमार, एम० ए०। आप पहले प्रोफेसर थे। यह आप ही की दुकान है। और फिर उसने अपने मित्र की ओर देख कर कहा— आप हैं राय बाबू--मेरे पुराने साथी। तब ये ऐसे थोड़े ही थे। सुन्दर और हट्टे कट्टे थे।"

राय बाबू ने कहा-- आप भी तो बदल गये हैं राजीव बाबू!"

यह सुन कर राजीव हंस पड़ा।

राय बाबू ने फिर कहा--"मुझे बहुत बार आपकी याद आई, पर आप कभी नहीं दिखलाई दिये। कहिये क्या हाल है आपका ? अब तो आप बहुत गम्भीर हो गये हैं।"

राजीव ने कहा--'आपके विवाह के बाद मैं बाहर चला गया था। तभी घर वालों ने विवाह कर दिया। तब से बाहर ही रहा। अब फिर यहां आगया हूं। रोटी का प्रश्न जो है, इसे तो कहीं न कहीं पूरा करना पड़ता ही है। परिवार में मैं हूं और मेरी स्त्री। किसी प्रकार दिन कट रहे है। आप बताइये अपनी।'

यह सुन कर राय बाबू ने जाने कैसी विषमता भरी वाणी में कहा--'मैं अपनी क्या बताऊँ राजीव बाबू? सब ठीक है अब। मेरी स्त्री मर गई।"

राजीव ने चौंक कर पूछा--'क्या श्रीमती नहीं हैं? मर गयीं? ओह!'

राय बाबू ने पूर्ववत ही कहा-- 'हां बाबू कोई साल भर हुआ वह मर गई। एक लड़का था जो उसके बाद मर गया। अब लड़की है जो ब्याह दी गई है। वह अपने घर है।'

'तो यों कहिये, जो घर बसाया था आपने वह उजड़ गया! आपकी बनी-बनाई दुनिया बिगड़ गई!'—राजीव ने कहा। 'आपका तो जीवन ही बदल गया! आप में जो सुन्दरता थी, वह नष्ट हुई!'

बात सुनते हुये राय बाबू अपनी सूखी और निरुद्देश्य

आंखों से ऊपर आसमान की ओर देखने लगा। तभी बरबस हँसते हुए उसने राजीव की ओर देख कर कहा 'मैं जहां से चला था यदि वहीं रहता, तो आज जीवन में सुखी होता। पर आज तो जैसे मैं खोखला हो गया हूं, राजीव बाबू! तब क्या समझा था मैंने कि जीवन में ममता और मोह भी पदार्थ हैं कोई? पर आज तो वह मेरे सामने है, जो रात-दिन रुलाता है, तड़पाता है।'

राजीव के मित्र ने कहा—'आप ठीक कहते हैं। उस ममता का विकास तो अब हुआ है, जो वेदना से युक्त है। आपका बना बनाया खेल बिगड़ गया।'

ऐसा ही होना था बाबू। राय बाबू ने कहा और दूर शून्य अन्तरिक्ष की ओर देखने लगा।

अब आप क्या कर रहे हैं? राजीव ने फिर पूछा।

राय बाबू ने तुरन्त उसकी ओर देख कर कहा—आपके सामने तो मैं चाय की कम्पनी में था ही। वहां अच्छा वेतन मिलता था। बाद में दो सौ रुपये मासिक मिलने लगे। उसी से कुछ जमा भी किया। पर बाद में वह नौकरी भी छूट गयी। रुपया भी और घर भी बीमारियों में निकल गया। तब से कई अन्य स्थानों पर काम

कर चुका हूं। अब भी एक नौकरी में हूं। एक अखबार का दफ्तर है। पन्द्रह रुपये मिलते हैं।'

'राय बाबू।' एकाएक राजीव ने उसकी ओर देखकर कहा—'आप ऐसे···'

तब बीच ही में राय बाबू ने कहा—'सब ठीक है, बाबू! अब अकेला हूं, खर्च चल जाता है। फिर राय बाबू ने दूसरे मित्र की ओर देखकर कहा—'अब किया भी क्या जाय; बाबू? मरा तो जायगा नहीं? शायद ऐसा ही है मनुष्य का जीवन।'

उस क्षण अपने मित्र की तरह राजीव भी मौन बन गया, मानो जीवन की सर्व-ग्राही कठोरता की व्यापकता उसकी आंखों के सामने आ गई हो। वह उसी में डूब गया था। वह देख रहा था—वह वही राय बाबू है, जो एक दिन अपने बंगाल देश से विवाह कर के नई-नवोढ़ा दुल्हिन ले आया था, जिसने बड़े प्रेम और सत्कार से एक दिन उसे भी भोजन कराया था। हां, यह वही तो राय बाबू है, जो आज की तरह पन्द्रह रुपये की नौकरी न करके, इतने और इससे अधिक रुपये किराये देकर रहता था। यह उस समय सुखी था, तब आल्हादपूर्ण था

राय बाबू का जीवन। और आज ?' तभी उसने झटके से राय बाबू की ओर देखकर कहा-'मुझे आपकी स्थिति जान कर बहुत दुःख हुआ, राय बाबू! मुझे लगता है जैसे कभी भी नहीं समझा जायगा जीवन, जैसे बरबस ही बहते और अपने को खपाते जा रहे हैं हम! हम सब की तरह ही एक आप हैं, जो नहीं जान पाये कि भाग्य भी है कोई चीज, जिसका फलना और फूलना ही काम हैं। क्या कहें; हम सभी पराजित हैं, हम सभी दीन हैं!'

यह सुन कर राय बाबू राजीव की ओर देख कर मुस्कराया। तदनन्तर बोला--'राजीव बाबू, अपना-अपना भाग्य है सब। यह राय अब भी नहीं मरा। और जाने ऐसे कब तक जीता और जीवन में सड़ता रहेगा यह।'

'क्या कहूं, राय बाबू ? दुःखपूर्ण जीवन रहा आप का राजीव ने कहा।

राय बाबू ने गहरी सांस भरी; और क्षण भर के बाद ही उसे छोड़ कर, सूखे दांतों से हंसता हुआ बोला जो खोया है मैंने, उस सब के लिये मैं अपनी अनेक रातों में रोता हूं। पर अब तो देखता हूं, जैसे यह सब

होना ही था; जो हो लिया। मैंने अपने जिस चिराग को जलाया ही था; उसी के नीचे यह सब कुछ भी था..."

राजीव ने गहरी सांस छोड़कर कहा--'तो अब ?'

'अब ? मैं शेष हूं; बाबू ! जीवन मर गया है। इच्छाएं दब गयी हैं। और जो कुछ देखना था; वह सब देख लिया ? ऐसा ही तो है जीवन ! शायद अपनी-अपनी समझ का फेर है सब ?"

राजीव ने यह सुनकर अपने मित्र प्रोफेसर की ओर देखा।

तभी राय बाबू ने फिर कहा—'मैं अब कहीं भी नहीं आता-जाता। अपने मित्रों और सम्बन्धियों से भी छूट उगया हूं अब।' कहते-कहते राय बाबू का स्वर रुंध गया; सका गला भारी हो गया।

सचमुच उस क्षण राय बाबू रो पड़ने की स्थिति में आ गया था। किन्तु उसने अपने को रोक लिया। दूसरी ओर देखता हुआ बोला-'मेरे हृदय में जो प्रेम का प्रगाढ़ श्रोत व्याप्त था; वह विवाह के बाद बरबस ही फूट निकला जो फिर बच्चों में भी मिल गया। पर मैं पाषाण हूं; पत्थर हूं ? अपने फूल से बच्चों को जिन हाथों से पाला

पोहा, उन्हीं से फूंक दिया उन्हें ? कैसा अभागा हूं मैं ?' कहते २ उसकी आंखे भर आईं।

राजीव ने पूछा—'आज कल कहां रहते है आप ?'

'यहीं–पास ही। आप चलेंगे ? आज मुझे फिर बच्चों की याद आगई। लगता है, जैसे वह सामने मां की गोद में खेल रहे हैं। मैं जिन बच्चों को देखता हूं; उनमें ही जैसे मेरे बच्चों की आत्मायें डोलती लगती हैं' कहते कहते तुरन्त ही राय ने अपने को झकझोर कर बदल देना चाह कर कहा–'दुनियां में ऐसा ही होता है, बाबू ? मेरी क्या हस्ती है ?'

राजीव के मित्र ने कहा—होता तो है, लोग जानते भी हैं, पर सभी यह अनुभव नहीं करते। सभी के साथ ऐसा नहीं होता।

'जिनके साथ होता है, वे अभागे हैं।' राय बाबू ने कहा।

तब राजीव ने अपने मित्र की ओर देखकर कहा–'अपनी मनस्तुष्टि के लिये जाने क्या क्या सोचता है आदमी। दुनिया की बस्ती में रहने वाला, यह हाड़ मांस का जीव, अपने को खोकर भी, जो पाता है, उससे विरक्त थोड़े ही होजायगा। मनुष्य की यही दार्शनिकता है।'

तभी उसने राय बाबू से कहा—'आपके दर्शन हो गये, आप जीवन में फिर एक बार मिल गए आज।'

राय बाबू ने कहा—'आइये, चलें ! मैं आपको अपने बच्चों के चित्र दिखाऊंगा। देखिये तो; मैं कैसी दुनिया में आ गया था, जिसे हवा के एक ही झोंके ने नष्ट कर दिया।'

'आपके कितने बच्चे थे ? राजीव ने पूछा।'

'पांच। चार मर गये ?'

राजीव ने अपने मित्र से बिदा ली, और खड़ा हो गया। वह राय बाबू के साथ चल दिया। पास ही एक गली के अन्दर छोटा-सा मकान था, जो गन्दा और मैला पड़ा था। राय बाबू ने मकान खोला। एक छोटी-सी चारपाई पर, जिसपर ओढ़ने और बिछाने के कपड़े पड़े थे, राय बाबू ने जगह करते हुए कहा—बैठिये।

बैठ कर राजीव ने उस कोठरी के सामान को देखा, जो ले-दे कर एक आदमी की पूरी गृहस्थी के लिए भी काफी नहीं था।

उसी क्षण राय बाबू ने कहा—आप कहेंगे तो कि कहां लाकर बैठा दिया। मैं यहां किसी को लाता भी नहीं।

और मित्र भी कोई नहीं है अब। जैसी आय है, वैसा खर्चा है। इस कोठरी के तीन रुपये देता हूं। गुजर ही तो करती है। कहते-कहते राय बाबू मुस्कराया।

राजीव ने कुछ आहत-से भाव से कहा--आप को बहुत कष्ट है, राय बाबू? आप अकेले हैं; मेरे साथ रहिये न।

राय बाबू ने दिया जला लिया। जलते ही तेल की कुप्पी आले में धुंआं छोड़ने लगी। तब राय बाबू ने कहा—वैसे तो मेरे दामाद ने भी साथ रहने को कहा; पर वह मुझे नहीं रुचा, निभता भी नहीं।

आप सचमुच अभागे निकले, राय बाबू।

हां, इसमें अब भी कमी है क्या?

आप के जूते भी टूट गये हैं। कोट भी बहुत पुराना है।

यह सुन कर राय बाबू हँसा, और खड़ा होता हुआ बोला—पहिले मैं रोटी खा लूं। आइये, आप भी?

राजीव ने कहा--हां, हां, आप कीजिये भोजन।

राय बाबू ने आले पर से रोटियां उठायीं और पानी का लोटा भर कर पास रख लिया।

राजीव ने पूछा--आप दाल और सब्जी नहीं बनाते क्या ?

राय बाबू ने हँस कर कहा--आप तो सभी पोल जान लेते हैं बाबू। महीने का आखीर है । परसों एक पैसे का अचार ले आया था जिसमें दो चार मिर्चें भी आ गईं थीं । उसी से कट गया आज तक ।

राजीव मौन रहा । वह एक खूंटी पर टँगे राय बाबू के कपड़े देख रहा था जो मैले थे, फटे-पुराने थे, जिन्हें देखने के साथ ही वह राय बाबू के भूत और वर्त्तमान की तुलना करने में लीन हो गया--जो एक-दूसरे से दूर थे दोनों ही विपरीत थे ।

खा-पी कर राय बाबू ने पास जाकर कहा—"अब दिखाऊं आप को चित्र ।"

"दिखाइये ।"

राय बाबू ने आले में रखे कागजों में से एक लिफाफा निकाला और उसमें से कुछ फोटो निकाल कर बोले—यह देखिये मेरी पहिले की दुनिया का रूप । अब आप कल्पना कीजिये मेरे उस सुख की ।

राजीव ने देखा—आठ-दस चित्र हैं जो बच्चों के हैं

और राय बाबू और उनकी पत्नी के साथ हैं। कितने सुन्दर सुन्दर बच्चे थे।

एक चित्र उन्होंने उठा कर कहा—जरा इस कुमुद के चित्र को देखिये। बड़ा नटखट और शैतान था यह। जहां शाम को मेरे दफ्तर से यह आने की आहट पाता तुरन्त आबू-आबू करता मेरे पीछे पड़ जाता। इसकी मां कहती अरे ठहर तो उन्हें कपड़े तो उतार लेने दे। पर यह कहां मानता। मुझे वैसे ही इसे गोद में लेना पड़ता और मुन्नी को देखा आपने? बाबू मैं इस मुन्नी को बड़ा प्यार करता था। स्त्री इसी के शोक में मर गई।

इतने में हठात् राजीव चौंक पड़ा। देखा राय बाबू के गालों पर आंसू बह रहे हैं। वह उन चित्रों को एकत्र करता हुआ बोला--राय बाबू समझिये आपने एक नाटक देखा था जो अब अदृश्य हो गया। इन चित्रों को रख दीजिये। मैंने व्यर्थ ही आप को रुला दिया। सचमुच ही बड़े सुन्दर थे आपके बच्चे पर वह जिसकी वस्तु थी उसने पाई। आप तो एक निमित्त थे जो पूर्ण हुआ। उनके कुछ संस्कार थे, जो आप से आ मिले। अब रोना क्या? जो गये सो गये।

राय बाबू ने कहा–'अपनी दुख की अवस्था में इन चित्रों से अपूर्व शांति पाता हूं, बाबू।'

'सो ठीक भी है। यह सब पवित्र चित्र हैं जिनसे आप बँधे हैं। अब ईश्वर पर आश्रित हूजिये आप।'

'क्या जाने, है भी ईश्वर। मैं तो नहीं समझ पाता।'

राजीव ने सूखे–से स्वर में कहा––दुखी जो हैं इसी-से ऐसा सोचते हैं आप। पर उसका यह काम नहीं है। वह शान्ति देता है। अब उसी की ओर देखिये आप।

तब राय बाबू जाने कैसी दृष्टि से बाहर के अन्धकार को देखने लगे थे।

राजीव चलने के लिए उद्यत होता हुआ बोला–अच्छा अब आज्ञा दीजिये। फिर मिलूँगा।' वह उठ गया।

राय बाबू में बड़े सौजन्यपूर्ण स्वर में कहा–आप मिले हैं आज इतनी मुद्दत बाद। मैंने कुछ भी आतिथ्य नहीं किया।'

राजीव ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा–

वैसे हूं तो मैं भी आप--जैसा ही पर मेरा उजड़ा कुछ नहीं है। बस यही भेद है।'

मकान के द्वार पर राजीव ने विदा ली। नमस्कार करके उस अँधेरी गली में वह आगे बढ़ गया।

राजीव की इच्छा थी कि वह राय बाबू को कोई अच्छा-सा काम दिला दे। इसके लिए उसने कई मित्रों से कहा भी। अब राय बाबू उससे प्रायः मिलते रहते। इस बीच कई बार उसके घर आये, बैठे, भोजन किया। राजीव भी उनके यहां आता-जाता। उसके मन में अकस्मात ही राय बाबू के प्रति ममता व्याप गई जो सदा उसे प्रेरित करती रहती।

तभी उन्हीं दिनों राजीव को लगा कि राय बाबू जैसे कहीं चले गये। वह न आये न दिखाई दिये। तब एक दिन वह उनके घर गया। उस मकान में एक और किरायेदार था जो बूढ़ा था। उसकी बुढ़िया भी थी।

राजीव ने जा कर आवाज दी-राय बाबू।

मकान की बुढ़िया ने पूछा-कौन है भैया?

मैं हूं राजीव। राय बाबू हैं?

बुढ़िया ने कहा-अन्दर चले आओ। राय बाबू बीमार हैं। कई दिन से बुखार में पड़े हैं।'

राजीव अन्दर पहुंचा, और राय बाबू की कोठरी के सामने जा कर पुकारा—'राय बाबू !' अन्दर जा कर देखा, तो राय बाबू सचमुच बीमार थे।

राय बाबू ने कहा—आओ, राजीव बाबू। बैठने को वह बोरी ले लो। मुझे बुखार है।

राजीव ने पूछा—कोई दवा ली ?

राय बाबू ने राजीव की ओर देख कर चकित और उद्विग्न भाव से कहा—मैं दवा कहां पाता, राजीव बाबू ? और वह छत की कड़ियों की ओर देखने लगे।

राजीव को लगा, जैसे राय के अन्दर कुछ अटका है, जैसे जो और कहना था वह नहीं कहा। तब उसने फिर पूछा—आप को कब से बुखार है राय बाबू ?

'चार-पांच दिन से।'

आप ने मुझे क्यों नहीं बुलाया ? और यह क्या ? आप रो रहे हैं राय बाबू।

राय बाबू की तो हिचकियां बंध गयीं। उन्होंने राजीव का हाथ पकड़ लिया और उसी प्रकार रोते हुये कहा—मेरा कहीं अन्त भी है राजीव बाबू ? जाने कितना और बाकी है जीवन !

राजीव ने कहा–यह आपके सोचने की बात नहीं है। मन शान्त कीजिये। मैं अभी वैद्य को लाता हूं। अच्छे हो जायेंगे आप। वह उठ खड़ा हुआ।

राय बाबू ने कहा–राजीव बाबू...

राजीव रुका नहीं। वह बाहर चला गया। वह वैद्य के यहां जा रहा था। रास्ते में ही उसके मन ने कहा—'क्या जाने ईश्वर नाम की वस्तु है भी या नहीं। आखिर इस राय बाबू ने क्या अपराध किया है जो इतनी यन्त्रणा यह बेचारा भोग रहा है?...इसके दुःखों की सीमा भी है कहीं?'

इतने में वह एक वैद्य की दुकान पर पहुंच गया। वैद्य उसके परिचित थे। राजीव ने उन्हें जाते ही चलने के लिये कहा। वह बैठा नहीं।

वैद्य ने रोग पूछ कर अनुमान से दवा ली, और उठ खड़े हुये। राजीव के साथ आ कर उन्होंने राय बाबू को देखा, दवा दी और गरम पानी से लेने को कह कर चल दिये। राजीव वहीं ठहर गया। उसने कोठरी के कोने में पड़े कागज उठाये, और अँगीठी में कोयले डाल कर आग सुलगाने बैठ गया। पानी गरम किया और राय बाबू को

वैद्य की दवा खिला दी। तब वह चलने के लिये उठा। उसने जेब में हाथ डाला और उसमें जो पाँच रुपये का एक नोट रखा था उसे निकाल कर राय से बोला—अच्छा राय बाबू अब तो मैं जाऊँगा। अब आप जल्दी ही ठीक हो जायँगे। मैं फिर आऊँगा। आप को कुछ खाने को भी चाहिए। इसलिए यह रख लीजिए पांच रुपये का नोट। इससे काम चलाइये।"

राय बाबू ने आवेग के स्वर में कहा—राजीव बाबू...।

राजीव ने बीच में ही कहा—यह दुनियादारी की बात है, राय बाबू! यह एहसान भी नहीं है। कल को मेरे साथ भी ऐसा हो सकता है।

राय बाबू ने कहा—पर आप भी कौन मालदार हैं भाई!

"तभी तो ऐसा है राजीव। बड़ा होने पर क्या आ पाता आप के पास?" यह कहकर रणजीत हँसा और नोट राय के सिरहाने रख कर जूते पहनने लगा?

राय बाबू ने पूछा—आयेंगे आप।

"हां हां क्यों नहीं?" वह द्वार से हटा और चल दिया।

इसके बाद दो-तीन दिन में राय बाबू भले-चंगे हो गये। बुखार जाता रहा। फिर राजीव अपने एक काम से बाहर चला गया। लगभग दो मास बाद लौटा। जब आया तो उसके दूसरे दिन बाजार में वह अपने मित्र प्रोफेसर की दुकान पर गया। कुछ देर तक वह बातें करता रहा। अकस्मात प्रोफेसर कोई बात याद आ गई। वह बोला--"क्यों, राजीव बाबू, तुम्हें वह बंगाली रायबाबू भी मिला था, जो तुम्हारा पुराना दोस्त है?"

राजीव ने कहा—"इसी बीच नहीं मिला। अब मिले शायद। क्यों तुम्हें मिला था? गरीब आदमी है बेचारा।"

प्रोफेसर ने हँसते हुए कहा--"अरे, तुम भूल में हो राजीव। वह एक दिन यहीं पास ही शराब पिये नाली में पड़ गया था। भंगी उसे झकझोर रहा था।"

राजीव ने आश्चर्य से इस बात को सुना।

प्रोफेसर फिर बोला—"वह मूर्ख भी है।"

तब राजीव ने कुछ खीजते और दर्द के स्वर में कहा:—"होगा, प्रोफेसर। हमें क्या? पर पहले वह सभ्य था, सुशिक्षित था, यह जानता हूं। शराब पी ली होगी।

बंगाली प्रायः शराब पीते हैं। लोग अपना दुःख भुलाने के लिये भी नशा कर लेते हैं।"

प्रोफेसर इस पर ठहाका मार कर हँस पड़ा।

इसके बाद राजीव कुछ और बैठ घर चल दिया। घर पहुंचते ही स्त्री से सुना—घी नहीं है, आटा भी खत्म हो चला है।

राजीव ने कहा—"अच्छा!"

स्त्री बोली—"और तुम अपने कोट के लिये कपड़ा जरूर ले लो। जाड़ा सिर पर है।"

राजीव ने फिर कहा—"अच्छा, ले लूंगा।"

स्त्री ने कहा—"तुम्हारा 'अच्छा' ही रहता है' कुछ करते-धरते तो हो नहीं!"

तब उसने बड़ी कठिनाई से कहा—"भई, कह तो रहा हूं, ले आऊंगा सब। पैसा तो आने दो!"

उसी समय नीचे से आवाज आई, जिसे सुनते ही राजीव ने पूछा—"कौन है?"

"मैं हूं राय।"

"आओ, राय बाबू, चले आओ!"

राय बाबू ने ऊपर आते पूछा—"कब आये?

अभी सुना कि आगये हैं। कहिए वैसे तो स्वस्थ रहे आप? मैंने जान भी अकस्मात लिया था कि आप यहां नहीं हैं। इस नीचे की दूकान से ही पता मिला। फिर उसी से ही कई बार पूछ गया।"

राजीव ने शिष्टता के साथ कहा--"हां, मैं एकाएक ही बाहर चला गया था। आप सुनाइये, काम पर जा रहे हैं आप?"

राय बाबू ने कहा—"आपको यही तो सुनाना था। मुझे दस हजार की लाटरी मिल गयी है। कई महीने हुये, तब छोड़ो था। अब नौकरी छोड़ दी है। फिर भाग्य-पलट गया।"

राजीव ने प्रसन्न हो कर कहा—"धन्य भाग्य आपका! चलिये, पेट की ओर से तो मुक्ति मिली। मैं तो कहता ही था; ईश्वर क्यों नहीं सुनेगा आपकी! देखिये, सुनी न!"

किन्तु राय बाबू ने इस बात को नहीं सुना, नहीं समझा, नहीं स्वीकार किया। माथे को सिकोड़ कर, वह विरक्ति और गम्भीर भाव से बोले--"ईश्वर की सत्ता तो मैं सदा स्वीकार करता आया हूं, राजीव बाबू। पर पैसा

है, मैं इसलिये उसे स्वीकार करूं यह नहीं चाहूंगा ! पैसे का अपना अलग स्थान है, जो ऐहिक है, जो आवश्कता पूर्ति के साथ समाप्त है ! यह और भूख नहीं मिटा सकता।"

"पर इस समय तो आप इसके लिये ही चिन्तित थे ? ऐसी अवस्था में क्या खाक करते किसी अन्य लोक की कल्पना ! राय बाबू, पहिले पेट को रोटियाँ चाहियें। अगर आपका पेट भूखा है, तो जीवन की सभी दृष्टियां भूखी हैं। आपके और आवश्यकता के बीच जो पैसे की मध्यस्थता है, वह उपेक्षणीय नहीं है। पैसे के अभाव ने आज ने मनुष्य को पंगु बना दिया है !"

"पर मैं अब इस पैसे की महत्ता नहीं समझ पाऊंगा राजीव बाबू ! मैं इसे बिखेर दूंगा, लुटा दूंगा !"

यह सुन कर राजीव मुस्करा कर बोला--"तो आप फिर नंगे और कंगाल बन जायँगे। मिस्टर राय, यह भावुकता और आदर्श की बातें कभी ग्राह्य नहीं बन सकीं। यह तो सुन्दर कल्पना और भावनाओं का निचोड़ है, जिसे दुःखी और विक्षुब्ध मानव सुख का और आत्म-तुष्टि का आभास मानता है।"

किन्तु राय बाबू जैसे इस बात से सहमत नहीं हुए उन्होंने प्रसंग बदल कर कहा—'खैर, छोड़िये इस बात को। मैंने तो आपको बताया है कि यह पैसा आपका है। जब जितने की जरूरत हो, निःसंकोच बताइयेगा मुझे। मैं आपका बहुत अधिक आभारी हूं।' वह खड़े हो गए और बोले—'अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। फिर मिलूँगा। नमस्कार।'

राजीव ने कहा—'अच्छा, नमस्कार।

राय बाबू चले गए। राजीव फिर कमरे में अकेला रह गया। इसके बाद ही स्त्री ने आकर कहा—'यह राय बाबू था?'

राजीव ने कहा—'हां वही था।'

'पर यह तो शराब पिये था।

राजीव ने स्त्री की ओर देख कर कहा—'तब क्या हुआ? अब उसके पास पैसा है। वह दस हजार रुपए का मालिक है।'

स्त्री ने आश्चर्य से—'दस हजार का। कहां से आए?'

राजीव जैसे किसी और बात में अटका था। बात

सुन कर उपेक्षा से बोला--'आते कहां से ? लाटरी से पाए हैं उसने।'

'पर यह शराब क्यों पीने लगा ? यह बुरा है।'

तब राजीव ने खिन्नता और झुंझलाहट के साथ कहा--'मैं क्या बताऊँ ? जाओ, पूछ आओ उससे कि क्यों पीने लगा वह शराब।'

इस आवेश-भरी झिड़की को सुनकर पत्नी सन्न रह गई। उसकी आंखें भर आईं। वह एकटक सामने की ओर देखने लगी।

और जैसे सचमुच ही राजीव में कोई बात थी, जिस ने बरबस ही उसे आन्दोलित और विकृत बना दिया था जिन राय बाबू के प्रति उसमें दया और ममता उपजी थी, उन्हीं के लिए आज उपेक्षा और घृणा-सी उसके अन्दर व्याप गई। वह कुर्सी छोड़कर कमरे में घूमने लगा, और उसी स्थिति में अपने आप बोला—'जाने यह क्यों आया था राय का बच्चा ! बताने आया था कि अब मैं भी हूं पैसे वाला—मालदार ! कम्बख्त कहीं का ! और यह स्त्री सरला ? है न मूर्ख ? भला इसे क्या मतलब, राय चूल्हे में जाये या भट्टी में ?'

तभी उसने सरला की ओर देख कर कहा—"तुम से कितनी बार कहा है कि व्यर्थ की बात मत किया करो, पर सुनती थोड़े ही हो तुम! तुम्हारा कौन है राय? मरे तो, शराब पिये तो।"

यह सुन कर आंखें पोंछते हुए सरला ने प्रताड़ित भाव से कहा—"उस दिन पांच रुपये क्यों दे आये थे उसे? याद है, उस दिन खाना भी नहीं बना था? तब तो जैसे राय ही था सब-कुछ!"

राजीव यह सुन शरमाया, और उदास हो गया। उसने नम्र हो कर कहा—"अच्छा, भाई, अच्छा! तुम से कुछ कहना आसान थोड़े ही है। इधर कहा कुछ कि तुम्हारी आंखें लगीं आंसुओं से खेलने। और तुम यह देख भी नहीं पातीं कि मैं कब कैसी दशा में हूं। इस कम्बख्त राय बाबू ने आज मेरा दिमाग खराब कर दिया है! मैं अपने घर की चिन्ता में तो था ही, इसने आकर मुझे और अशान्त बना दिया। आज यह रुपया पाकर शराबी बनने चला है, कल स्त्री चाहेगा। क्या बताऊँ तुम्हें कि कैसा है राय बाबू? लाओ, एक गिलास पानी दो।"

सरला पानी लेने गई, तो राजीव ताजी आई डाक

खोल कर देखने लगा। इस प्रकार उसने बरबस राय बाबू को अपने मस्तिष्क से निकाल देने का प्रयत्न किया। जब पानी आया, तो वह पानी की ओर देख कर हठात हँस पड़ा।

सरला ने कहा--"लो पानी।"

यह सुन कर राजीव ने प्रेम पूछा--"अच्छा, अच्छा तो प्रसन्न हो तुम ?"

"जल्दी लो पानी! अँगीठी पर दूध रखा है, उफन जायगा!"

राजीव ने पानी पी लिया, और खड़ा होकर बाहर जाने लगा।

सरला ने कहा--"आटे का और घी का ध्यान है न ?"

यह सुनते ही राजीव ने जेब से दस रुपये का नोट निकाल कर बढ़ा दिया।

उसे देखने ही सरला ने कहा--"मैं अपने रुपये ले लूंगी।"

"कितने हैं तुम्हारे ?"

"हिसाब लगा लो, तीन रुपये घी के दिये, डेढ़ रुपया

सब्जी में, आठ आने और । हां, चार आने उस दिन तुम ले गये थे।"

राजीव हँसता हुआ बोला—"अच्छा भाई, ये सभी तुम्हारे हैं।" तब वह बाहर न जाकर वहीं कुर्सी पर बैठ गया, और एक अखबार उठा कर देखने लगा।

किन्तु कैसी अजब बात थी कि जिन राय बाबू के प्रति राजीव ने अपनी एक अलग धारणा बना ली थी, वही अब रुपये पाकर भी सुखी नहीं थे, शान्त नहीं थे। उस रुपए ने एकाएक उन्हें उद्विग्न बना दिया। उनके हृदय-तल में जो धीरे-धीरे शान्ति और सन्तोष की भावना जगती जा रही थी, वह अकस्मात धन रूपी हवा का झोंका खाते ही फुर्र से उड़ गयी । उन्हें ध्यान था कि इसी धनके अभाव ने उनकी स्त्री और बच्चों को बरबस ही मौत के मुँह में डाल दिया था। धन ही उनकी परि-चर्या में सहायक होता, जिसके अभाव में वह कुछ भी नहीं कर पाये । उन्हें अब भी याद था कि उनका जो पिछला लड़का मरा था, उसके दाह-कर्म के लिए भी वह इतनी लकड़ियां न जुटा पाए थे जितनी होनी चाहिए थीं, जिनसे भली-भांति फुँक जाता उनका लड़का। वह अधजला

ही रहा। उसको वैसा ही बहा दिया गया दरिया की धार में। वह दृश्य, वह दारुण व्यथा आज भी राय बाबू को रुलाने में समर्थ थी। जब तक जियेंगे, याद करेंगे, और वह उनकी स्त्री, जिसने अपने जीवन में राय बाबू को पति मान कर अपना अक्षत प्रेम प्रदान किया था, जीवन का सारा लावण्य उनके चरणों में अर्पित कर दिया था—हाँ, उनकी स्त्री ऐसी दीनावस्था में मरी कि राय बाबू उस पर पूरा कफन भी न डाल सके। उसके पैर और मुंह कफन के बाहर ही निकले रहे थे उन्हें आज भी वह ज्यों का त्यों देखते थे यह सोचते—"यदि पत्नी होती, तो इस धन को देखकर फूली न समाती, अपने भाग्य को सराहती।

और आज पाया है यह धन, इकट्ठा ही दस हजार, जिसे कोई भी भोगने वाला और देखने वाला नहीं। कैसा अजब खेल है। माया की कैसी विडम्बना है। मैं इसका क्या करूँगा? कौन अब जीता ही रहूंगा मैं। जाने कब मर जाऊँ। जाने कब खप जाऊँ। मैं भी चला जाऊँगा एक दिन, यह रुपया यों ही पड़ा रहेगा व्यर्थ ही, निरुद्देश्य ही।

अपने इस विचार पर टिकते-टिकते एक दिन राय

बाबू अधिक मलिन और खिन्न हो गये । उनके अन्दर एक ऐसा हाहाकार उठ रहा था, जो उनके लिये जीवन में सर्वथा नवीन था। इधर वह अधिक शराब पीने लगे थे। वह अधिक अपने में ही अपने को खोते और खपाते जा रहे थे।

राय बाबू के परिचितों और मित्रों ने कहा—"अरे, बाबू, कैसे ही तुम ? अब क्यों नहीं छोड़ देते इस गन्दी और अंधेरी कोठरी को ? अब तो मालदार हो, भाई। एक ठाठ का बंगला लेकर रहो । यहां न रहो, तो चले जाओ अपने देश, और कर लो किसी नवोढ़ा से विवाह। और यहीं क्या कमी है औरतों की बहुत पैसे वाले को ? कौन बूढ़े हो गये हो तुम।"

राय बाबू ने इन बातों को सुना, तो मुस्कराये और हंसे। एकान्त पा कर वह जोर के ठहाके मार बैठते। उसी एकान्त में, ऐसी ही स्थिति में वह बाबू, जिनके सामने के कई दांत भी टूट गये थे, जिन्हें अब निरंतर रोने और कष्टों की चिंता से दिखायी भी कम देने लगा था, जो अब सचमुच ही अपने अन्दर एक हीनता, एक कड़वाइट और जीवन-शक्ति की भारी कमी अनुभव कर

चले थे, इन बातों को लेकर अब वह सोचते, और विक्षिप्त-सा बन जाते। वह अपने उन रूखे और घने लम्बे बालों में उंगलियां देकर, गड्ढों में धंसी हुई आंखों को आधा मींच कर, पूरी मजबूती से हाथों की मुठियों को बांध, और दोनों ओर के जबड़ों को भींच कर कहते—'अरे अभागे, आज तुझे भी इस पैसे ने पागल बना दिया। तुझे बौखलाने लगा; जो पीना और पिलाना ही चाहता है। कहां तक पियेगा तू। कहां तक जियेगा तू ?...और ये लोग—नीच कहीं के। ये ब्याह ही देखते हैं। ये स्त्री ही देखते हैं। रुपया ही देखते हैं।...यहां इन्होंने यही देखना सीखा है। कुत्ते कहीं के।...और तू है एक, जो यही सुनने चला है। तू क्यों नहीं इनके मुंह पर घूंसा मार देता। तू क्यों नहीं इन नोटों की गड्डियों को फाड़ देता, उनके मुंह पर नहीं दे मारता ? अरे, अब तुझे क्या देखना रह गया है। अभाग, जा, जा, अब और किसी जीवन की ओर जा तू। तू उड़ जा। तू मिट जा।...'

किन्तु तत्क्षण ही राय बाबू के यह अधीरता-भरे शब्द जाने कहां लीप हो जाते। वह अपने में डूब जाते। वह

अपने उस सूने अन्धकार में, जो उनके चारों ओर व्याप्त था, एक दिन भी नहीं देख पाये कि कहीं भी है प्रकाश की एक किरण, जिसके सहारे-सहारे वह अपने पथ पर चलें, बढ़ते चलें आगे।

इन रुपयों के आने के एक मास पहले ही, राय बाबू की ब्याहता लड़की भी मर गई। उसका पति भी कहीं दूर चला गया। अब राय बाबू का कहीं भी टिकाव नहीं था, जिसे वह अपना कहें, जो मोह और ममता का अंश उनमें बच गया था उसके ऊपर वार दें। यहीं पर उन्हें अपना जीवन भार मालूम पड़ता, वह मर जाना चाहते।

पर जैसे अभी नहीं मर सकेंगे राय बाबू, अभी और जीना है उन्हें। किन्तु जो चाह थी, जो उमंग और ममता थी, वह तो मर चुकी थी। ऐसे किस प्रकार चल पायेगा जीवन। पहले जब उनमें बैठी हुई ममता अपना मुंह ऊपर उठाती, तो वह लड़की के यहां चले जाते, उससे दो-चार बात कर आते, अपनी कुशल-क्षेम कह आते और उसका हाल पूछ आते। पर अब तो वह भी नहीं है। जो बच्चों के और स्त्री के चित्र उनके पास हैं—उनके आधार

पर वह कैसे जीते रह सकेंगे। ऐसे-ऐसे उन्हें कई अवलम्ब चाहिए।

और ऐसे थोडे ही हैं राय बाबू, जो नहीं जानते कि यह माया-ममता एक दिन यों ही पड़ी रह जायगी। वह ईश्वर-भक्त हैं। कभी उन्होंने गीता और आत्म-ज्ञान की बातें भी पढ़ी और सुनी थीं। पर आज वह दूर हैं उनसे। आज जैसे उनके हृदय का स्थान सर्वथा रिक्त हो गया है, जिनमें मानव की विरक्ति भी बैठ सकती थी, और अपनी उस पृथक हुई दिशा की ओर भी उसे खींच सकती, थी। जाने जीवन के प्रति उनमें कहां से इतनी आसक्ति व्याप गई है। वह उसमें विभोर हैं, उसमें डूबी हैं।...

सोचते हैं राय बाबू—'न, न, मैं विरक्ति न पा सकूंगा इस जीवन में। मुझे जीवन चाहिये। मैं इसीमें गलूंगा। और अब तो जरूर ही चाहिये जीवन। रुपया जो आ गया है, इसे भोगने का, इसे खर्च करने का जो प्रश्न आ गया है सामने!'

यह सोचते-सोचते राय बाबू उद्भ्रान्त की तरह मानो किसी अन्धकार में विलीन होते जा रहे थे। यदा-कदा

उनका राम २ कांप उठता, और जाने कैसी प्रेरणा से वह मूक बन कर अपने जीवन के रोते और सिसकते हुए इतिहास की ओर देखते रह जाते !

तभी एक दिन राय बाबू जब कहीं से अपने घर की ओर लौट रहे थे, तो वहीं सड़क के पास ही एक रोती हुई स्त्री उन्हें दिखाई दी। उस समय राय बाबू जाड़े से कांप रहे थे, और उन्होंने अपनी दोनों बांहों को बांध कर कोट की अस्तीनों में हाथ डाल लिये थे। जाड़ा ऐसा था, जैसे बर्फ गिर रही हो। जब वह उस स्त्री के पास से निकले, तो उन्होंने अनायास ही देखा कि उसकी गोद में बच्चा है और वह सिर झुकाए बैठी सिसक रही है।

उस शून्य पथ पर सर्दी से थरथराते रायबाबू यह सोचते आ रहे थे-'कल एक शाल ले आऊँगा। जब रुपया है तो उसका क्यों न उपयोग हो ? वह इसीलिये तो है।' उसी क्षण उनका ध्यान उस स्त्री की ओर गया था। वह आगे निकले ही जा रहे थे कि ठिठक गये, और बोले—"अरी, कौन है तू ?"

स्त्री ने कहा-"एक विपत की मारी औरत हूं।"

"हां, यह तो देखता हूं कि तू विपत्ति में है। फिर ?

पैसा चाहिये ?,, और सर्दी से थर-थर कांपने लगे राय बाबू। साथ ही देखा, बच्चा चिपटा हुआ है मां की छाती से; और वह स्त्री भी कांप रही है, सिकुड़ कर गठरी-सी बन गई है। उसने बात सुन कर एक बार राय बाबू की ओर देखा, और फिर झुका लिया सिर। उसने कहा कुछ नहीं।

राय बाबू को लगा कि बहुत पीड़ित है यह, युवा है, जो सब ओर से ठुकराई जाकर निराश्रित-सी यहां बैठ गयी है आकर। तब हठात् राय बाबू ने ऊपर की ओर देखा। कैसा अन्धकार छाया था चारों ओर! पथ जन-शून्य था। वह दहल गये। उनके हृदय में कम्पन भर गया। झटके से स्त्री की ओर देख कर वह बोले—'अच्छा, उठ, चल मेरे साथ! पास ही है मेरा घर।' फिर अपने हाथों को कोट की जेबों में ठूंस कर कहा—'ओफ! कैसी ठण्ड है।'

तभी स्त्री ने जाने कैसी दृष्टि से सामने खड़े राय बाबू की ओर देखा।

राय बाबू ने फिर कहा—'चल, भाई! ऐसे तो मर जायेगी तू, और बच्चे को भी मार डालेगी।'

'बाबू···'

'अरे हां, बेटी, उठ ! देखती तो है, मैं भी कांप रहा हूं। चल, खा लेना कुछ वहीं। एक ओर पड़ कर रात काट लेना। सुबह धूप हो जाने पर चली जाना, जहां जाना हो तुझे।'

यह सुन कर बच्चे को छाती से चिपटाये स्त्री उठ खड़ी हुई। वह राय बाबू के पीछे-पीछे चली।

घर आकर राय बाबू ने अपनी कोठरी का ताला खोला, दिया जलाया, और एक ओर बिछी चटाई की ओर इशारा करते हुये कहा-'बैठ, बेटी, बैठ ! अरी घबरा रही है तू ! हां, भाई, ठीक है। पर मुझे देख, तेरा बाप जैसा हूं। तेरी ही तरह विपत्ति की चक्की में पिस कर काट रहा हूं जिन्दगी के दिन। बाल सफेद हो गये हैं। मेरी बेटी कुमुद जीती होती, तो वह भी तेरी ही तरह अब तक बाल-बच्चे वाली हो गई होती।'

स्त्री चटाई पर बैठ गई। उसकी गोद की गर्मी पा कर बच्चा सो गया। जो फटी-सी पुरानी धोती वह पहिने थी, उसीसे उसने चारों ओर से बच्चे को ढँक रखा था। पर वह स्वयं कांप रही थी। उसके हाथ-पैर ओले से हो रहे

थे। नाक से बार-बार पानी निकल रहा था। और रह-रह कर दांत भी बज उठते थे।

तभी राय बा० उसकी ओर देख चौंक कर बोले—'ओह! तुम कांप रही हो। लो, यह रजाई ओढ़ लो! बच्चे को आराम मिलेगा।' और उन्होंने चारपाई से उठा कर रजाई नीचे डाल दी।

रजाई को देखकर स्त्री ने कृतज्ञ भाव से राय बाबू की ओर मुंह किया, जो कम्बल में लिपट कर बैठ गये थे। उसने संकोच भरे स्वर में कहा—'आप मुझे कम्बल दे दें। मैं उसी से रात काट लूँगी। यह रजाई आप ले लीजिए!'

यह सुनते ही राय बा० ने उसकी ओर देखा। दिये के प्रकाश में उसे देखते ही, उनके मन ने कहा—'जाने कैसी मुसीबत में है बेचारी? कुमुद से मिलती-जुलती है इसकी सूरत!' फिर कहा उससे—'मेरे लिए कम्बल काफी है, बेटी। तू आराम कर। नाम क्या है तेरा?'

'रामा।'

'तो, बेटी रामा, हां, बता तो, तू कैसे आ गई थी वहां उस सड़क पर?'

"यह न बताऊंगी।...बताने की बात भी नहीं है!"

"अच्छा-अच्छा। खाओगी न कुछ? बनाओगी तो क्या बाजार से ही ला दूँगा कुछ। मैं तो अकेला हूं, बेटी। कभी थे सब कोई, लेकिन अब नहीं है। इधर कई दिन से खाना नहीं बनाया। देखती तो हो, कई दिन के झूंठे बर्तन पड़े हैं! ऐसा ही हूं मैं। अकेला जो हूं। कमजोर भी हूं।" फिर वह उठ कर बोले-"इस बच्चे के लिये दूध ले आऊँगा। यह भी भूखा होगा।"

रामा ने अपने झुके हुए मुंह को ऊपर उठाया। उसने करुणा भरी दृष्टि से राय बाबू की ओर देखकर कहा—"आप रहने दें! इतना कष्ट क्या कम दिया है मैंने आपको? मैं रात ऐसे ही काट लूंगी! सुबह कहीं चली जाऊँगी।"

"कहीं चली जाओगी?" हठात चौंक कर राय ने पूछा—"क्या बात है? बताओ, बेटी रामा। क्या घर नहीं है तुम्हारा?"

रामा ने जैसे तुरन्त ही अपने को सँभाल लिया। उसे जो कहना था जैसे वही उसके मुंह से निकल चला था' जल्दी से उसने राय बाबू की ओर कातर दृष्टि से

देखते हुए कहा—"हां, कहीं क्या, अपने ही घर चली जाऊँगी सुबह !"

राय बाबू मुस्कराये। वह द्वार की ओर घने अन्धकार में आंखें गड़ाते हुए बोले—"अच्छा, बेटी, अच्छा ! सुबह चली जाना अपने घर। और देख, बेटी, वह सामने एक बुढ़िया रहती है। चाहे, तो वहां उसके पास सो जाना।"

रामा तुरन्त राय बाबू की बात के मर्म तक पहुंच गई। वह लजा गई। श्रद्धा और भक्ति के भाव से उसने राय बाबू की ओर देखकर कहा—"बाप बेटी एक घर में नहीं सो सकते क्या ? मैं इसी चटाई पर पड़ी रहूंगी !"

द्वार पर रुक कर यह बात राय बाबू ने सुनी। फिर वह मुड़कर बोले—हाँ-हां, क्यों नहीं, बेटी ? जहां चाहो सो जाओ !" और वह बाजार चल दिये।

तब अकेली रह जाने पर रामा ने राय बाबू की कोठरी में इधर उधर निगाह दौड़ाई, जो दरिद्रता और कंगाली की जीती-जागती तस्वीर बनी हुई थी, जो राय बाबू के जीवन का दर्पण थी। और वह ममता और कृतज्ञता के भाव लिए, उन दुबले पतले, काले-कलूटे

बूढ़े राय बाबू के जीवन पर टिक गई, जो उसके लिए सर्वथा अनोखा और निराला था।

सुबह हो गई थी। नित्य कर्मों से निबट राय बाबू कम्बल ओढ़े बैठे थे। रामा भी बहुत देर से उठ कर बैठ गई थी। उसका बच्चा अभी सो रहा था, और वह इस प्रतीक्षा में थी कि वह जागे तो वह राय बाबू से आज्ञा लेकर अपने रास्ते जाय। पर कहा जायगी वह? उसके लिए अब दुनियां में कौन सा ठौर बचा है इसका उत्तर उसके पास नहीं था। उसे अपने पैरों को आगे बढ़ाने के लिए कोई भी दिशा नहीं सूझ रही थी। वह अपने घुटनों पर मुंह रखे इसी चिन्ता में डूब उतरा रही थी, कि तभी राय बाबू की आवाज सुनकर चौंक पड़ी। उसने सिर उठा कर उनकी ओर देखा।

राय बाबू ने कहा "बेटी रामा, क्यों चुप चाप बैठी हो! कुछ सोच रही हो क्या!"

रामा ने गिरे और उदास मन से कहा "जी नहीं, कुछ तो नहीं..."

यह सुनकर राय बाबू मुस्कराये। तभी बच्चा जग गया। वह रोया। रामा ने उसे गोद में उठा लिया। अब

वह उस सनसनाती हवा में, केवल धोती ओढ़े और उसी में बच्चे को छिपाए, राय बाबू की कोठरी से बाहर हो जायगी। इस अभिप्राय से उसने राय बाबू की ओर देखा और जाने के लिए कहना चाहा।

तभी राय बाबू ने कहा—'इस मुन्ने को मुझे दो, बेटी! लाओ मैं गोद में ले लूं। मैं इसे खेलाऊंगा। मैं अपने मुन्ने के लिए अभी जा कर बाजार से चीजें ले आऊंगा। लाओ, दो!' और उन्होंने कम्बल से निकाल कर अपने दोनों हाथ फैला दिये।

रामा ने बच्चे को राय बाबू को देदिया। जरा देर के बाद कहा—'अब मुझे आज्ञा दीजिये मैं जाऊंगी! रात में आश्रय दिया! इतना क्या कम किया आपने?'

राय बाबू बच्चे को गोद में लेकर, अपने पोपले मुंह से पुचकारने लगे थे। सहसा रामा की बात सुनकर वह बोले—'ऐसी ठण्ड में जाओगी, रामा बेटी? चाय बना लो, कुछ आराम मिल जायगा। देखो, वह चाय का डिब्बा रखा है। मैं दूध ले आता हूं। और जो झूंठे बर्तन हैं मेरे, अभी मांज दूंगा उन्हें। दोपहर को जाना, बेटी खा-पीकर जाना। तब तक हम और मुन्ना खेलेंगे। आज

बहुत दिन के बाद एक मुन्ने को खिलाया हूं। एक समय था जब रोज अपने मुन्ने को खेलाता था। एक नहीं कई-कई को खेलाता था। पर...पर अब तो कोई नहीं रह गया, बेटी!' और उन्होंने बच्चे को छाती से लगा लिया और चादर ओढ़ कर बाजार चल दिए।

रामा के मन में जो था, जो उसे कहना था, उसे वह मन में ही लिए रह गई। और उसने मन में कहा—'एक ये बाबू है। इन्हें बच्चों से प्रेम हैं। बेचारे कैसे दयालु हैं! ये भी गरीब हैं।' फिर वह उठ कर राय बाबू के जूठे बर्तन मांजने बैठ गई।

उसने बर्तन मांज डाले। कोठरी साफ कर डाली। राय बाबू के जो कपड़े इधर-उधर पड़े थे, उन्हें तरतीब से रख दिया। कुछ को खूंटी पर टांग दिया। फिर वह बैठ कर राय बाबू की प्रतीक्षा करने लगी।

कुछ देर के बाद राय बाबू लौट आये। उनके एक हाथ में दूध का कुल्हड़ था, और दूसरे में गर्म जलेबियोंका दोना। दोनो चीजें रामाकी ओर बढ़ा कर वह बोले-"बेटी, रामा, मेरा मुन्ना जलेबी खायेगा, चाय पीयेगा। और

देख तो, मेरी ओर कैसे देख रहा है...कि कौन है यह भड़ासा खूसट बुड्ढा।"

रामा मुस्कराई, फिर अंगीठी जलाने लगी।

राय बाबू फिर बोले-"चाय के बाद दाल चढ़ा देना, बिटिया। उस कनिस्टर में रखी है दाल। दूसरे कनिस्टर में चावल है। और वह कनिस्टर जो नीचे है उसमें आटा है। घी, मसाला, नमक सब उस दूसरे आले में है।"

चाय बन गई। चाय का एक प्याला राय बाबू के सामने रख दिया गया। एक तश्तरी में जलेबी भी रख दी गई। खा-पी, कर राय बाबू ने सामने के मकान के सामने जा कर आवाज दी-"अरी, बिन्दो की मां! आज भीतर ही पड़ी रहेगी क्या? बाहर आ कर देख तो, कौन आई है मेरे घर! आज अकेला नहीं हूं।"

बिन्दी की मां भीतर से ही बोली-"अरे कौन है? भैया राय! अभी आई भैया!"

खांसते खंखारते बुढ़िया रजाई छोड़ कर बाहर आई। राय बाबू ने कहा-"मेरी कोठरी में चल कर देख! आ, तुझे दिखाऊं।"

उन्होंने बुढ़िया को पकड़ लिया, और उसे अपनी

कोठरी में ले आये। फिर रामा को दिखाते हुए वह बोले–"यह मेरी बेटी उतर आयी है, बिन्दो की मां! इसका लड़का मेरा नाती है। समझी तू।" और प्रसन्न और गदगद भाव से उन्होंने बच्चे को उठा लिया।

बिन्दो की मां ने कहा–"अच्छा है, भैया, अच्छा है। कुछ दिन रहेगी न?"

"हां हां, क्यों नहीं रहेगी?" कह कर राय बाबू चार पाई पर बैठ गये। फिर वह बच्चे से कहने लगे—"क्यों जायगा तू? ऊँहूं! मैं नहीं जाने दूँगा! अभी से कहे देता हूं। मुझ से तो ईश्वर ने मिलाया है तुझे! समझा! कहदे अपनी मां से, 'नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, अपने बूढ़े नाना को छोड़ कर!' फिर कैसे चली जायगी तेरी मां? नहीं जायगी, नहीं जायगी!"

बुढ़िया जाने कब की चली गई थी। किन्तु राय बाबू जैसे सब ओर से छूट कर, बस-भूल-भाल कर, उस बच्चे की सीमा में बांध गये थे। उससे हँस रहे थे, और उसे हंसा रहे थे। यह प्रफुल्ल था। उनका रोम-रोम मानो आलाद से भर कर थिरक रहा था। वह बच्चे की ओर देख कर फिर बोले–"अरे मेरे, मुन्ने, तू समझा दे अपनी

मां को, जो समझती है कि मैंने तुम दोनों पर उपकार किया! यह नहीं जानती वह कि जाने किस जन्म के कर्मों का, अपने किन संस्कारों का उसने अब फल पाया है! जो मुझे देना था, सो तुम्हारा ही था! मैं कौन हूं देने वाला? सब अपने भाग्य के अनुसार पाते हैं, भाई। मैं क्या दे सकता हूं-अभागा मैं, जिसने सब कुछ खो दिया?...अपने बच्चों को, तुझ से ही फूल से कोमल लालों को इन्हीं हाथों से बहा आया नदी की धारा में। मैंने इन्हीं हाथों से उन्हें पाया था, पाला पोसा था। और वे चल दिये मुझे छोड़ कर-एक भी नहीं बचा।" और उनकी आंखों में आंसू बहने लगे।

तभी रामा ने अंगीठी के पास बैठे ही बैठे कहा—"आप क्या कर रहे हैं, पिताजी? न रोइये।"

और राय बाबू यह सुनते ही फफक-फफक कर रो पड़े। उन्होंने बच्चे को छाती से चिपटा लिया था। कुछ देर के बाद शान्त हो कर वह बोले-"हां, बेटी रामा, तू नहीं जानती इस बूढ़े की व्यथा। आतो मेरे पास, तुझे दिखाऊं अपनी दुनिया का रूप, जिसमें एक दिन बसा था वह बूढ़ा।"

उन्होंने आले से लिफाफा उठा लिया, और सब फोटो रामा के सामने रख कर बोले-"देख तो, कोई समझेगा भला कि ऐसा ही था आज का यह राय ? ये थे मेरे बच्चे ! यह थी इन बच्चों की मां ! इसने अपने को मेरे ! आराम और सुख के लिये बलि कर दिया था ! यह देवी थी ! सदा मेरा ही सुख देखा इसने !"

'अच्छा, अब मत रोइये आप ! रख दीजिये इन्हें ! एक दीर्घ-निःश्वास खींच कर रामा ने कहा।

रायबाबू के दुख का, दीनता का प्रत्यक्ष चित्र उसकी आंखों के सामने था। उसने अपने मन में कहा-'ठीक ही तो कहते हैं ये ! सभी कुछ खो दिया इन्होंने । भरी-पूरी दुनिया लुट गई इनकी !'

वह उठ कर फिर अंगीठी के पास चली गई। राय बाबू ने सब चित्र पूर्ववत् रख दिये, और आंखें पोंछ डालीं। बच्चा सो गया था। उसे चारपाई पर सुला कर, वह नीचे चटाई पर बैठ गये।

दाल-भात बन गया। रोटियां सेंकने के लिये रामा ने तवा चढ़ा दिया। थाली परोस कर राय बाबू के सामने रख दी। राय बाबू ने थाली को और अपने पास सरका कर, रामाकी ओर देख कर कहा-"बेटी रामा, तुम बताती

तो अच्छा होता, कि कहां जाओगी। तुमने कुछ नहीं कहा, कुछ भी नहीं बताया। मैं ऐसे किस तरह जाने दूंगा तुम्हें ?"

रामा ने हाथ में ली हुई आटे की लोई की रोटी बनाई, और तवे पर डाल दी। तब राय बाबू की ओर देख कर वह बोली—"कोई ठौर हो, तो बताये रामा कि कहां जायगी ! कहीं भी चली जायगी !!"

राय बाबू ने छूटते ही कहा-"तो तुम्हारा कोई ठौर नहीं है, बेटी रामा ? निराश्रित हो तुम !" उनका गला भर आया, और भरी आंखों से वह रामा की ओर देखते हुए बोले-तुम ऐसी अभागिन हो, बेटी रामा !"

यह सुनते ही रामा ने राय बाबू की ओर देखा बड़ी दीनता और कातरता के साथ।

राय बाबू उसकी ओर देख कर और अधिक आतुर हो कर बोले-"रोती क्यों हो, बेटी ? ऐसे कबतक रोती रहेगी? कोई अन्त है इसका ? आज से समझो कि यह राय बाबू ही पिता है तुम्हारा; सेवक है तुम्हारा। मैं बच्चे के साथ खेल कर काट दूंगा अपने दिन। मेरे कोई नहीं है, बेटी, तुम्हारे भी कोई नहीं है !"

रामा ने कहा—"बाबू..."

राय बाबू ने बीच ही में कहा—"बस, बेटी, अब नहीं जा पाओगी तुम! इस रायको सँभालो, पति है तुम्हारे?"

"नहीं?"

"मां-बाप?"

"नहीं।"

"तब कौन है तुम्हारा?"

"कोई नहीं। जो थे, अब वे भी नहीं हैं मेरे।"

"कोई हर्ज नहीं, बेटी। अब यह राय है तुम्हारा इसे ही अपना समझो।'

रामा चुप रही। उसने दूसरी रोटी सेंक कर राय बाबू की थाली में डाल दी। राय बाबू ने हंसते हुए कहा—"ठहरो, बेटी, अभी तो खाना शुरू किया है। अब मेरा मन कुछ हल्का हुआ है। खूब जी भर कर खाऊंगा अब?'

यह सुन कर रामा ने कुछ नहीं कहा। वह फिर जिज्ञासा और आतुरता-भरा मन लिए देखती रह गई राय बाबू की ओर, जो प्रसन्नता पूर्वक जल्दी-जल्दी

थाली में हाथ चला कर चावलों में दाल मिलाने में लगे थे।

तभी रामा ने अपने मन में कहा–यह भी अभागे हैं, तू भी अभागी है।...'

इस प्रकार निराश्रित रामा को एक आधार मिल गया। हां टिक कर वह अपने जीवन के दिन बिताने लगी। और राय बाबू के जीवन में जो अभाव था, जो सूनापन था, वह भी मिट गया। वह अपनी जिस दुनिया से छूट गये थे, उसका प्रतिरूप उन्हें फिर मिल गया।

किन्तु यह सब पाकर भी राय बाबू के जीवन में एक ऐसा स्थान रिक्त था, जहां उन्हें एक उमस, एक बेचैनी भरी ज्ञात होती। इसी से राय बाबू अब भी स्थिर नहीं थे।

रामा को आये दो मास से ऊपर हो गये हैं, और राय बाबू उससे और उसके बच्चे से काफी लग-जंध गये हैं। मनुष्य सेवा और श्रद्धा चाहता है। और अपने पति के बड़े भाई और भावज द्वारा विधवा हो जाने पर सताई जा कर, आधारहीन अवस्था में पाये सहारे के

कारण रामा से राय बाबू को अनायास सब कुछ मिल गया। उनकी जितनी भी आवश्यकतायें थी, वे सभी रामा ने समझली, और एक पुत्री की तरह उन्हें पूरी कर चली। रात के सोने के लिए बिस्तर बिछाने से ले कर खाने पीने आदि की व्यवस्था तक में राय बाबू को कुछ भी अब करना न पड़ता।

तभी उन्हीं दिनों एक दिन जब राजीव अपने मित्र प्रोफेसर की दूकान पर पहुंचा, तो बात करते-करते अकस्मात् प्रोफेसर ने चौंक कर कहा-"अरे, तुमने नही देखा, राजीव! देखो देखो, वह तुम्हारे राय बाबू के साथ कौन है नई-नवोढ़ा। इसने पैसा क्या पाया, स्त्री भी ले आया। बच्चा भी है उसके साथ। मैं तो अकसर देखता हूं इसे। कहीं घूमने जा रहा है शायद।"

राजीव उस ओर देखने लगा, जिधर राय बाबू जा रहे थे। वह कल ही बाहर से आया था। आते ही यह सुन लिया था कि राय बाबू एक स्त्री ले आये है, जो बड़ी सुन्दर और युवा है। अब उसे देख भी लिया। जो कुछ सुना था ठीक ही निकला। और कल सूचना देने वाले ने अपना मत भी दे दिया था कि बदमाश और

लुच्चा-लफंगा है राय बाबू।

राजीव ने जैसे कल की बात पर कुछ नहीं कहा था, वैसे ही आज भी मौन और स्थिर रह कर उधर जाते हुए राय बाबू और रामा की तरफ देखता हुआ अविचल मूर्तिवत बैठा रहा।

प्रोफेसर ने फिर कहा--"हम लोग तो यों ही रहे, राजीव बाबू! यह राय बाबू ही ठीक निकला कि सब कुछ खो कर फिर पा गया—धन, स्त्री, सब कुछ। हम मर ज ग ऽ, भी समझ पायेंगे इस जग और जीव का मर्म और विधाता की व्यवस्था।"

राय बाबू दृष्टि से ओझल हो गये। प्रोफेसर की बात सुनकर, किंचित चौंक कर राजीव ने प्रोफेसर की ओर देखा। वह मलिन भाव से मुस्कुराया। उसके अन्दर जो एकाएक वेदना भर गई थी, वह चेहरे पर व्यक्त हो गई।

प्रोफेसर ने फिर कहा—"सब अपना-अपना भाग्य है, राजीव बाबू।"

राजीव ने ऊपर असमान की ओर देखा। फिर आंखे मींचता हुआ वह बोला--'हां, अपना-अपना भाग्य है भाई।' और फिर एकाएक उसने प्रोफेसर की ओर देख

कर कहा–'पर मैं नहीं मानता, नहीं मानना चाहता !'

'तुम आदर्शवादी हो। पर यह वाद तो सदा भूखा और पराश्रित ही बना रहता है भाई।'

"शायद ऐसा ही हो ?'

"नहीं, यही बात है।"

"हां हां, कहा तो !" राजीव किसी बात को लेकर उलझना या तर्क करना नहीं चाहता और प्रोफेसर उद्यत हैं तर्क करने को।

तब राजीव उठ खड़ा हुआ, और विदा लेकर घर चल पड़ा। उस वक्त वह अशांत और रुआंसा हो गया था। उसके हृदय में भयानक चीत्कार उठ रही थी, जो रह रह कर उसे नोच रही थी। घर जाकर वह सीधे अपने कमरे में जा बैठा। सरला ने जो उसकी ओर देखा, तो सहम गई। वह बोलते २ रुक गई और दो क्षण रुक कर वहां से चली गई।

राजीव के हृदय में जो आंधी, जो बवण्डर उठ खड़ा हुआ था, वह शनैं शनैं दब गया, उसका रूप बदल गया। उसने अपने मुंह को हथेली पर टेक कर मन में कहा— आखिर तुम राय के प्रति उपेक्षित और ईर्षालु क्यों बन

गए हो, राजीव ? वह पैसे वाला बन गया है, इसीलिए ? एक सुन्दर स्त्री ले आया है, इस कारण उसके प्रति तुम्हारे ऐसे भाव हो गए हैं ? जरूर यही बात है ! उसके प्रति-तुम्हारी सहानुभूति तुम्हारी ममता कदाचित उसके रोने और तड़फने पर ही आधारित थी ! और अब चूंकि वह सुखी हो गया है, वैभव पा गया है, इसलिए...

'राजीव ! राजीव !' एकाएक उसने दांत भींचकर कहा—तम क्यों ऐसे बन गए हो ? तुम ईर्या करते हो, घृणा करते हो। राय को क्यों नहीं अधिकार है कि वह स्त्री पाए, धन पाए, वह भी आदमी है, उसके अन्दर भी एक जीता-जागता दिल है।

तब उस क्षण राजीव इतना उद्भ्रान्त और आतंकिक हो गया था कि बरबस उसे अपने आप पर घृणा हो आई। वह पलंग पर चादर तान कर पड़ गया।

और लोगों की सम्मति से रायबाबू पतित हो चुके थे। रामा के आने के बाद से इस बीच में वह अनेक स्थानों पर सुन चुके थे कि उन्होंने एक नई नवोढ़ा को अपने घर में रख लिया है, उसे जड़ा लाए हैं, खरीद लिया है।

यह बात एक दिन की तो थी नहीं। दिन प्रति दिन

यह बढ़ती और फैलती गई और राय बाबू हैं कि जैसे पत्थर हैं, जो किसी से कुछ पूछते नहीं, कुछ कहते नहीं बस घर में आते हैं, और खा पी कर, रजाई ओढ़कर सो रहते हैं। एक आध बार उन्होंने चाहा कि रामा हंसती है उसका बच्चा हंसता है, तो वह भी हंस देते हैं, नहीं तो चुप रहते हैं वह। अभी उसी दिन की तो बात है, जब उन्होंने अपने छोटे से बक्स की चाभी रामा के हाथ में दे कर कहा था—"इसे संभाल कर रखलो, बेटी। इसी बक्स में हैं मेरे जीवन का सुहाग।"

इसके बाद ही जाने कैसे राय बाबू के मन में शंका उपज आई थी कि अगर राम, सब लेकर भाग जाय, तो उन्हें भूखा और नंगा ही रहना पड़ेगा। पर तभी जाने कैसे आह्लाद से थिरकन भरे वर में उन्होने अपने मन में कहा था—ले जाएगी, तो ले जाय। मैं भी तब इस भ्रम जाल से छूट जाऊंगा।

किन्तु आखिर आदमी ही तो थे राय बाबू, उनके अन्दर भी मुलायम सा दिल था, जो १ दिन टूट गया, चूर-चूर हो गया। उस समय रायबाबू कहीं से घर की ओर आ रहे थे, उनके घर के पास ही चौराहा था, यहां

खड़े कुछ लोगो ने उन्हें रोका, और अपने पास बुलाया। राय बाबू पहुंचे उन लोगो के पास। तब एक व्यक्ति ने जोर से उनके अन्धे पर हाथ मार कर कहा-"कहो, बंगाली बाबू फांस कर लाये हो, यह नयाब चिड़िया। कहां पर, कितने में खरीदी थी! ढेर सा रुपया पा गये हो न। इसलिए...

यह सुन कर राय बाबू का चेहरा एकबारगी तमतमा उठा। यह चलने लगे। तब एक दूसरे व्यक्ति ने उन्हें पकड़ लिया। फिर आस पास जो नौ जवान खड़े थे वे तुरन्त ही अपने स्वभाव का अल्हड़पन बिखेरने लगे— कोई नाली की कीचड़ उछालने लगा, कोई पत्थर फेंकने लगा, कोई गालियां देने लगा।

कंकड़ आए, पत्थर आये, नाली का कीचड़ आया, मैला आया। और राय बाबू खड़े थे। उसी तरह स्थिर और अजेय। सिर फूट गया। कपड़े सब खराब हो गये।

तब एक व्यक्ति ने उनके पास आकर कहा—"अरे, जा-जा। मर जायेगा। क्यों मरने को खड़ा है। जा कर दिखा उस नवोढ़ा को अपनी सूरत।"

किन्तु राय बाबू अभी कह भी न पाये थे कि कंकड़

पत्थर की मार और तीव्र हो गई। लोग जैसे पागल हो रहे थे जैसे वे किसी चोर को, किसी बदमाश को मार रहे थे। तब एकाएक कुछ समझदार व्यक्तियों ने चारों ओर से घायल राय बाबू को जबरदस्ती यहां से हटाया और पहुंचा दिया। वह टूटा और प्रताड़ित हृदय लिये चारपाई पर आ गिरे, और कराह कर जाने कितनी व्यथा से भरे, क्षीण स्वर में रामा की ओर देख कर बोले—अरे बेटी रामा, जल्दी वह बक्स खोल। उसमें से निकाल थैली।' फिर वह चीख उठे—'आह। मैं मरा! हाय राम!'

रामा ने विकल होकर जल्दी से बक्स खोला, थैली निकाली, और उसे राय बाबू के पास लाकर बोली—बाबू जी क्या बात है? क्या कहीं गिर पड़े। कपड़े कीचड़ से सन रहे हैं। इतनी चोट कैसे लगी?'

और राय बाबू के दरवाजे के बाहर सड़क पर लोग चीख रहे थे, चिल्ला रहे थे—'बदमाश है यह! हम मार डालेंगे इसे। जला डालेंगे इसे। पापी है, अधम है!..."

राय बाबू ने रामा की बात सुनकर व्यग्रता से कहा—'इस थैली को खोल, बेटी! मेरी बात सुन! खोल, खोल!'

रामा ने थैली से सब नोटों की गड्डियां निकाल लीं।

राय बाबू ने अपनी छाती जोर से दबाते हुए कहा—'इन्हें सँभाल कर रखना, बेटी ! यह तेरा है सब !...मैं जा रहा हूं...मैं जाऊंगा अब ?'

और तभी उन्होंने द्वार पर खड़े राजीव और प्रोफेसर की ओर देखा। उन्हें देखते ही, वह एकबारगी चीख कर बोले—"अरे, तुम हो तुम ?...राजीव बाबू, क्या तुमने भी सुना, तुमने भी कहा..."

और उन्होंने अपनी छाती को जोर से दाब लिया। एक क्षण भर के बाद वह फिर चीखे—"बेटी रामा ? हाय ! हाय ? कैसे हैं ये सब लोग ? किसी ने नहीं सोचा, किसी ने भी नहीं देखा। बेटी, बेटी।"

रामा जोर से रो पड़ी। उनकी चारपाई के पास बैठ कर उसने अवरुद्ध कंठ से कहा—"पिता जी।"

राजीव और प्रोफेसर पास आ गये। रामा ने उन नोटों की गड्डियों को उन दोनों के पैरों पर उंडेलते हुए कहा—'इन्हें बचाइये, बाबू जी ? बचाइये, बचाइये सब रुपये लगा कर बचाइये।"

राजीव बाबू ने राय बाबू के ऊपर झुक कर पुकारा "राय बाबू।

है राय बाबू ने आंखे खोलीं । बोले—'मैंने इस रामा को बेटी के रूप में अपनाया है राजीव बाबू। अब...अब और उनकी आंखों से आंसू निकल कर गालों पर बहने लगे। वह उसी प्रकार दीनता की प्रति मूर्ति बने लड़खड़ाते स्वर से फिर बोले-"इस अन्त समय में आप भी मिल गये। धन्य भाग। इस रामा का ध्यान रखना। वह निराश्रता है, इसके कोई नहीं है। इसे आप पर छोड़ता हूं।"

और उनकी आंखे पूरी खुँल गई। और फिर बड़ी उद्विग्नता से सब की ओर देख कर, उन्होंने दो बार हिचकियां लीं और हमेशा के लिये शान्त हो गये।

राजीव ने उद्विग्नता से पुकारा—"राय बाबू ! राय बाबू ?'

लेकिन कौन जबाव देता ? राय बाबू थे कहां कि जवाब देते ? उस नाम का पंछी, तो जैसे फुर्र से उड़ गया था।

रामा नोटों की गड्डियां लिये एकबारगी पछाड़ खा गिर पड़ी। उसका रोदन-भरा चीत्कार कोठरी में गूंज

उठा। और वे सौ, पचास, दस और पांच के नोट मुड़ मुड़ा कर राय बाबू के चारों ओर छितरा गये।

प्रोफेसर ने कहा—'ओफ। बहुत बुरा हुआ, राजीव बाबू! कोई नहीं समझा। लोगों ने व्यर्थ ही मार डाला राय बाबू को। आओ इन्हें नीचे उतार लें।

राजीव कुछ नहीं बोला। उसने राय बाबू को नीचे उतरवा लिया। फिर उन सब नोटों को उठा कर रामा की गोद में रखते हुए वह बोला—'अब शान्त हो जाओ, बहिन? हम ऐसे ही पापी हैं। हम चारों ओर पाप ही देखते हैं।' और जेब से रूमाल निकाल कर वह आंखें पोंछने लगा।

रामा ने पूर्ववत् रोते हुए कहा—'मुझे इन्होंने अपनी सगी पुत्री के समान समझा, बाबू जी। एक सहारा मिल गया था मुझ अभागिन को जो आज इस तरह छिन गया।"

राजीव तब प्रोफेसर को लेकर कफन लेने चल पड़ा। चौराहे पर जाकर उसने खिलखिला कर हंसते लोगों को कहते सुना—'चलो, अच्छा हुआ। मर गया कम्बख्त दूर हुआ एक पापी?"

उसी क्षण बिजली की सी तीव्रता से राजीव के मन में आया कि उन लोगों के मुंह में थूक दे, एक-एक की नाक पर घूंसा मार दे। किन्तु इसके विपरीत वह घृणा और प्रतिहिंसा की आग में जलता हुआ प्रोफेसर का हाथ पकड़ कर शीघ्रता से आगे बढ़ गया।

तब प्रोफेसर ने कहा—'राय बाबू देवता थे। वह हम सब से बहुत ऊंचे और महान थे।'

राजीव कुछ नहीं बोला।

प्रोफेसर ने फिर कहा—'आज जो हुआ बहुत बुरा हुआ। लोग पकड़े जा सकते हैं, सजा पा सकते हैं।'

राजीव ने मानो अपने को बरबस किसी और दिशा की ओर ले जाते हुए कहा—'देखो, प्रोफेसर, वह दूकान है, जहां कफन मिलेगा।"

और वे उस दुकान की ओर बढ़ गये।

हिन्दी पाठकों से

अगर आप हिन्दी उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवन-चरित्र, राजनीति साहित्य पढ़ने के प्रेमी हैं तो आज ही १) भेजकर हमारे स्थायी ग्राहक बनें और हिन्दुस्थान भरकी हिन्दी पुस्तकें ।) रुपया, ≡) रुपया, =) रुपया और -) रुपया कमीशन पर घर बैठे मगायें। विवरण और नियम के लिये पत्र लिखें।

कुछ उत्तमोत्तम उपन्यास—कहानियाँ, आवारगर्द १॥) कोलतार २॥), एकाकी ३) त्याग का मूल्य (रविबाबू) ५), गीतांजली १॥।), अंगारे १॥), महिमा २), हृदय का कोना १॥), विराग १॥।), चढ़ती धूप ४॥), क्रान्ति दूत ४॥), जादू का मुल्क ३), सोने की ढाल ३), शरीर बीबी १॥।), चगताई की कहानियां २॥), स्वाधीनता के पथ पर ६), पथिक ६), उन्मुक्त प्रेम ६), राजसी कलाकार १॥), मलनियां ऐसी बनीं १॥), नर्तकी २)

स्थायी ग्राहकों को पोने मूल्य में।

मंगाने का पता—

प्रभात प्रकाशन दरीबा कला दिल्ली